

जिनके प्रताप-प्रभाव में उच्च पद प्राप्त मनुष्यों के र्थाचने की शक्ति थी इसी प्रताप द्वारा असाधारण विचारशक्ति विद्वान राजा महाराजा जिनकी ओर झुकते थे इननाही नहीं परंतु वे उनके सुगुण-पुण्य की शक्तिका की सहक से प्रसन्न हो मुक्तकंठ द्वारा श्लाघा-प्रशंसा करते थे ऐसे यतिश्रामें प्रधान श्रीलालजी महाराज को मैं अंतःकरण पूर्वक नमस्कार करना हूं ॥५॥

दम्भोजिभूतं निरभिमानिनमात्मलक्ष्यं
 कंदर्पमर्षदशनोत्सन्नने समर्थम् ।
 शांतं सदैव कृष्णावकृष्णालयं त
 श्रीलालजिदृग्णिवरं प्रणमामि भक्त्या ॥६॥

भाचार्यः—दंभ-मिथ्याखंभर जिन्हें लेशमात्र भी पसंद न था, आचार्य पदप्राप्त एवम् प्रतिष्ठाप्राप्त सरदारों के पूजनीय होने भी जिन्हें अभिमान छुआ भी न था परंतु भिर्क आत्माही की ओर जिनका लक्ष्य था, कंदर्प-कामदेवरूपी विषागी सर्प की डाढ़ें उग्या-टने में जो जिनयी हुए थे, जिनके चहुं ओर शानि स्थापित थी, दया के नां जो सागर थे उन आचार्य शिरोमणि श्रीलालजी महाराज को मैं आंतरिक भक्ति से नमस्कार करना हूं ॥६॥

पापाणतुल्यहृदया अपिकेचनाया
 ताः स्वधर्मपदवी कुशलेन येन ।

प्रतापसौभाग्य-वर्णनाष्टकम् ।

वसन्ततिलका वृत्तम् ।

सद्यस्त्वमेव पृथिवीप्रवरप्रदीपो

हर्तान्धकारपटलस्य हृदि स्थितस्य ॥

सन्धेऽपरः प्रकटितस्तरणिर्नवीनो ।

धृत्वा तनुं शुभतरां क्षितिपादचारी ॥ १ ॥

भावार्थः—हे मुनिवर ! तथिर्कर केवली प्रभृतिकी अनुपस्थितिमे वर्तमान समय में 'जैन समाजके हृदयके तमको नाश करनेवाले आप स्वतः ही पृथ्वी के श्रेष्ठ सूर्य (दीपक) हैं । मेरी मान्यता है कि मानुषिक देह धारण कर, आप पृथ्वी पर पादविहारी विलक्षण नवीन सूर्य प्रकट हुए हैं । आकाशमें भ्रमण करनेवाला एक मूर्ख और पृथ्वी पर विचरने वाले आप दूसरे सूर्य हैं ॥ १ ॥

सूर्योदयस्य वैशिष्ट्यम् ।

बाह्यां स्तमस्ततिमलं प्रतिहन्ति भानु

र्नाभ्यन्तरां हृदयभूमिनतानितान्तम् ॥

त्वं तु प्रबोधकजिनोक्तवचोवितानै

र्जाड्यं द्वय हरमि भूमिरवे जनानाम् ॥ २ ॥

विजय लक्ष्मीः

संघाटके मुनिषु सन्सु महत्सु चान्ये
 प्वाचार्यपूज्यपदवीपदमाश्रिता ते ॥
 मन्ये प्रतापतपनं ह्युदित तत्रैव
 द्रष्ट्वा प्रसच्चिमभजत्त्वयि सा जयश्रीः ॥ ४ ॥

भावार्थः—स्वर्गीय, पूज्य श्री — चौधमलजी महाराज के अवसान समय पर आचार्य और पूज्य पदवी का प्रश्न उपस्थित हुआ उस समय आपकी सम्प्रदाय में आपसे अधिक वयोवृद्ध और संयम में बड़े मुनिवर विद्यमान थे तोभी आचार्य पूज्य पदवी आपके चरणों को ही बरी, इसका कारण मुझे तो यह प्रतीत होता है कि आपका प्रताप-सूर्य प्रकट होगया था उसे देखकर ही विजय लक्ष्मी आप पर मोहित होगई ॥ ४ ॥

साम्राज्यतारुण्यप्रदर्शनम् ।

वैज्ञानिकाः पदविभूषितपण्डिताश्च
 नव्याः पुरातनजनाः क्षितिपा महान्तः ॥
 सन्मानयन्ति दृढाक्तिपुरःसरं त्वया
 मध्याह्नकालमहिमैष धरारवेस्त्वे ॥ ५ ॥

विजय लक्ष्मीः

संघाटके मुनिषु सन्सु महत्सु चान्ये
 ष्वाचार्यपूज्यपदवीपदमाश्रिता ते ॥
 मन्ये प्रतापतपनं ह्युदित तवैव
 द्रष्ट्वा प्रसत्तिमभजत्त्वयि सा जयश्रीः ॥ ४ ॥

भावार्थः—स्वर्गीय, पूज्य श्री — चौथमलजी महाराज के
 अवसान समय पर आचार्य और पूज्य पदवी का प्रभ उपस्थित
 हुआ उस समय आपकी सम्प्रदाय में आपसे अधिक वयोवृद्ध
 और संयम में बड़े मुनिवर विद्यमान थे तोभी आचार्य पूज्य
 पदवी आपके चरण को ही वरी, इसका कारण मुझे तो यह प्रतीत
 होता है कि आपका प्रताप-सूर्य प्रकट होगया था उसे देखकर ही
 मैं भी आप पर मोहित होगई ॥ ४ ॥

साम्राज्यतारुण्यप्रदर्शनम् ।

वैज्ञानिकाः पदविभूषितपण्डिताश्च
 नव्याः पुरातनजनाः क्षितिपा महान्तः ॥
 सन्मानयन्ति दृढभक्तिपुरःसरं त्वं
 मध्याह्नकालमहिमैष धरारवेस्ते ॥ ५ ॥

॥ ७ ॥

॥ ७ ॥

॥ ७ ॥

॥ ७ ॥

भाषाणे:—आपके पतापती सामाजिक समीचीनता की कि
हम भूमि-काठियावाड़ी भूमि में जहाँ २ आपने पदार्थों की
हम काम में आपसे दीक्षा में और हममें बड़े एतद्विज्ञान मनि
प्रिगजमान थे, परन्तु कोई व्याख्यान न देने भिक्ति आपके सामन
एक ही सभा में सब छात्र, भावक और अन्य मतावलम्बी लोग
आपके व्याख्यान सुनने को उन्मुख रहते और आपसे पास में ही
व्याख्यान दिलाते थे और किसी मुनिके दिलमें लेशमात्र भी यह
विचार नहीं आता था कि हमारे भक्त हमसे आपको अधिक मान
इयों देते हैं ? यह भी चिन्तित्विहारी सुमूर्य रूप आपके मव्याहन
काल की महिमा ही है ॥ ७ ॥

येनैकदापि तत्र वाक्श्रवणाकृता वा

दृष्टं सकृच्च सुभव्यमुखारविन्दम् ॥

आजीवनं मनसि तस्य अविस्त्वदीया

लम्ना विभाति महिमैष तत्रैव भूतेः ॥ ८ ॥

... का ... रत्नम् ...
 ... के ...
 ... भागी ...
 ...
 वि-... निरकल होंगे ॥ २ ॥

विलुप्तं रत्नम् ॥

वंशम्भृत्तम ॥

हा हा ! ! हतं केन समाजभूषणम्
 किंचिन्न यत्राम्नि विकारदूषणम् ॥
 अलंकृता येन विराजते मही
 रत्नं विलुप्तं तदिहोत्तमोत्तमम् ॥ ४ ॥

भावार्थ ---: अरेरे ! जिनकी प्रकृति में कोई विकार नहीं,
 जिनके चरित्र में कुल्ल भी दूषण नहीं, ऐसा हमारा एक जगम रत्न
 कि जो जैन समाज का देदीप्यमान भूषण था उसे किसने चुग
 लिया ? अरे ! जिनसे सम्पूर्ण विश्व अलंकृत था ऐसा हमारा
 उत्तमोत्तम रत्न इस पृथ्वी पर छे कहां गुम होगया ? ॥ ४ ॥

उपजातिवृत्तम्

भ्रान्त्वार्थभूमावबलांकयामः
 स्थले स्थले रत्नमिदं महार्घम् ॥

ग्राप्तुं न योग्यः किम् मन्त्रेणैकः
 स्वर्गोऽथवापरगकनाभ्य जाता ॥
 क्लेशः आपद्येऽरुनिहागं किं
 कस्माद्गन्तं स्वर्गगुहां निहाय ! ॥ ७ ॥

भावार्थः—क्या उस जवाहिर के रहने के लिये यह मृत्युलोक-
 मनुष्य लोक उचित न था ? या स्वर्गलोक में उसकी विशेष आय-
 प्यकता होने में कोई उसे वहां ले गया ? या वर्तमान प्रचलित
 सांप्रदायिक क्लेश के कारण यहां रहने में उसे अरुणि हुई ? कि
 लिये वह इस पृथ्वी पर कहीं न रहते स्वर्गलोक में चला
 गया ? ॥७॥

हतं न केनापि वृथाऽत्र शोधः
 ग्राप्तुं न शक्यं पृथिवीतलेऽस्मिन् ॥
 गतं स्वयं तत्खलु दिव्यलोकं
 प्रयोजनं किं तदहं न जाने ॥८॥

भावार्थः—हे मानवो ! तुम्हारा वह अमूल्य रत्न इस पृथ्वी
 पर किसीने नहीं चुराया, इसलिये उसे हूँदना वृथा-निष्फल है।
 इस पृथ्वी की समभूमि पर चाहे जितनी तलाश करो तोभी वह
 कहीं न मिलेगा, वह स्वतः दिव्यलोक-स्वर्ग की ओर प्रयाण कर
 गया है । “किस लिये” यह प्रश्न करोगे तो मैं इस का प्रत्युत्तर देने
 में असमर्थ हूँ कारण मैं इस विषय से विशेष विज्ञ नहीं हूँ ॥८॥

मृत्यु और रोग शोकादि दुःखोंकी निवृत्ति हो । परन्तु जिस तरह किसी वन में भटकते हुए मनुष्य को राह दिखाकर बाहर निकालने वाले पथदर्शक की आवश्यकता है इसी तरह इस सांसारिक विकट वन से पार हो मोक्ष नगर पहुंचाने के लिये भी किसी सन्मार्गदर्शक पथिक की आवश्यकता है । इसलिये जो महान् पुरुष इसके ज्ञाता हैं उनका अवलंबन करना उनकी आज्ञा मानना और उनका अनुकरण करना सर्वोच्च उपाय है ।

ऐसे महात्मा प्रत्येक युग में उत्पन्न होते हैं, अनादि काल से ऐसी विश्व व्यवस्था है कि जब २ इन आत्माओंकी आवश्यकता होती है तब २ उनका प्रादुर्भाव होता है, ये सांसारिक क्षुद्र चासनाएँ त्याग संसार को अपने जन्म समय की स्थिति से अधिक उच्चर स्थिति में लाने का निष्काम वृत्ति से प्रयत्न करते हैं इनका समस्त ऐश्वर्य परोपकारार्थ लगता है । संसार के कल्याणार्थ अपनी आत्मा समर्पण करने भी वे सदा तत्पर रहते हैं और कर्तव्य पालन करने हुए अपने प्राणों की परवाह भी नहीं करते, उनके आचार विचार, नीति रीति, जीवन के छोटे बड़े समस्त काम ध्रुव की तरह संसार सागर में अपनी जीतननोंका प्रज्ञान के लिये दिशा दिग्गान को अटल बने रहते हैं ।

उपर्युक्त महात्माओं में भी जो रागद्वेष से सर्वथा मुक्त हैं

धीनमें और चौथे आगों में तीर्थहरों का अभिन्न रहना है या चतुर्थी अर्थात् चौथी काल में २४ गोर उगती अर्थात् चौथी काल में २४ तीर्थहर होते हैं। प्रत्येक काल चक्र में दो चौथी होती हैं जिनमें अनंत कालचक्र फिर गण और अनंत तीर्थहर हो गये हैं।

अनेक इष भारत क्षेत्र में वर्तमान अर्थात् चौथी के चौथे आरे में चतुर्भुज से महावीर स्वामी तक २४ तीर्थहर हुए। इनमें चरम तीर्थकर श्री महावीर प्रभुका वर्तमान में शासन प्रचलित है।

श्री महावीर स्वामी का जन्म आज से २५२० वर्ष पूर्व (ई० सन् ५६६ वर्ष पूर्व) पूर्वस्थित विहार के कुंडपुर नगर के क्लत्रिय कुल भूपण, ज्ञातवशी, काश्यप गोत्री मिथ्या राजा के यहां हुआ था। उनकी माता का नाम त्रिशला देवी था। प्रभुगर्भ में ही तत्रही से राजा मिथ्या के राज्य विस्तार में तथा वन धान्यादि

* सब तीर्थकर क्लत्रिय कुल में ही जन्म लेते हैं और राज्य वैभव त्याग जगदु द्वार करने के लिये समय लेते हैं। त्रिशलादेवी सिंध देश के महाराजा चेटक (चेड़ा) की उत्तम पुत्री थी। उनका दूसरा नाम प्रियकारिणी था। उनकी महिन चलणा मगध देश के अधिपति राजगृही नगरी के महाराजा श्रेणिक जो भारतीय इतिहास में प्रियमार के नाम से प्रसिद्ध हैं उनकी पटरानी थी।

प्राप्त करने को उद्यत हुए । राजमहल में रहने वाले सुकुमार राजपूत सिंह, व्याघ्रादि, हिंसक पशुओं के निवास स्थान भयानक अरण्य में अनेक उपसर्ग सहन करते विचरने लगे । अन्य परिग्रहों का परित्याग करने के साथ २ ही देह ममत्व रूप परिग्रह का भी उन्होंने सर्वथा परित्याग किया था । इसलिये शिशिर ऋतु की कलकलती थंड में उत्तर हिन्द में जहां हिम पड़ता और शीत वायु बहती थी वहां वे बल रहित समस्त रात्रि ध्यानावस्था में वितते थे । प्रभु जन कायोत्सर्ग ध्यान में स्थित रहते थे तब कई समय ग्वाल आदि निर्दयता से उन्हें पीटते थे । एक समय एक निर्दय ग्वालने प्रभु के कान में खीले ठोक दिये, दूसरे ग्वाल ने उनके दोनों पैरों के मध्य की पोलाइ में अग्नि जला उम पर क्षीर पकाई, तो भी प्रभु ध्यान से विचलित नहीं हुए । इसके सिवाय चंडकौशिक नाग, शूलपाणियक्ष-संगम देवता प्रभृति की ओर से प्राप्त परिग्रह तथा अनार्य देश के विहार समय आनार्य लोगों के किये उपसर्गों का वर्णन सुनकर-गोमाच हो आता है ।

परंतु लुमा के मागर श्री महार्थीर स्वामी ऐसे विषम समय को भी कर्मक्षय का कारण समझ आनंदपूर्वक सहन कर लेते थे । उपसर्ग करने वालों का भी श्रेय चाहते अथवा श्रेय मार्ग की ओर उन्हें लगा देते थे । गौशक्ताने उनपर तेजोनिग्या छोड़ी तोभी प्रभु

भाग्य भाग्य है, इस योग पर इ मणि पति मान लेनी है । परमत्पु
 तर्मन् परमन् से मन इ दूर हो, आत्मभासमें स्थित होनी है ।
 भा माते अनन्त ज्ञान और अनन्त भावार्थ का भाव होता है अपनादि
 जनने अविनाशी आत्मा विनाशक परमजिह्व दशा में अहं ममता
 शरण कर राम रूप के संभनने नाना हुआ है और नगमे ही चतु
 गति सन्नार क अनन्त दुःख मदन करने पडे है । उनकी सत्यता
 प्रमाणित होती है, देहादिक परमत्पु में ममत्व न रहने से दुःख क
 नहीं सक्ता, शारवत सुख का अगूढ भणार तो अपनी आत्मा ही है
 ऐसा उसे साक्षात्कार होता है सब आत्मा समान हैं ऐसा भाव होते
 ही सर्वआत्म पर समदृष्टि होती है सब जीवों को अपने समान समझने
 लगता है जिससे वैर विरोध और लोभ क्रोधादि दुर्गण एवम् तज्जन्म
 दुःखों का सदंतर अभाव हो जाना है । जगत् के छोटे बड़े समस्त प्राणीयों
 के सुख की ही सतन् स्पृहा रहती है, सुख सबको सर्वदा प्रिय होता
 है, ऐसा समझकर वह सबका सुखी करने के लिये प्रेरित होता है,
 इससे ज्ञानी पुरुष मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ भावनाए
 भी मोक्ष की कुञ्जी प्राप्त कर लेते हैं, मैं अजर अमर अविनाशी हूं
 देह के नाश से मेरा नाश नहीं, ऐसा समझ कर वह भय का नाम
 निशान मिटा देता है और मृत्यु से नहीं डरता है । जो मृत्यु से
 नहीं डरता वह क्या नहीं कर सक्ता ? अर्थात् सब मिद्धियां प्राप्त कर
 सक्ता है इसलिये ज्ञानको मोक्षकी प्रथम पांक्ति का स्थान दे प्रभु करमाते

आचार्य हुए। वराहमिहिर को इनसे ईर्ष्या हुई और जैन दीक्षा त्याग ज्योतिष विद्या के बल से लोगों में प्रसिद्ध हुए। उन्होंने वराह संहिता नामक एक ज्योतिष शास्त्र बनाया है ऐसी कथा प्रचलित है कि वे तापस वन अज्ञान तप से तप्त हो मरकर न्यंतर देव हुए और जैनों को उपद्रव प्रसित रखने के लिये महामाटी रोग फैलाया, उस उपसर्ग की शांति के लिये भद्रबाहु स्वामीने 'उपसर्गहर' स्तोत्र रचा और उसके प्रभाव से उपद्रव शांत होगया। इतिहास प्रसिद्ध मौर्य वंशीय * चंद्रगुप्त राजा भद्रबाहु स्वामी का परम भक्त हुआ।

* श्रेष्ठिक राजा का पौत्र उदाई शपुत्र मरने के पश्चात् पाटली पुत्र की गारी एक नाई (हजाम) के नंद नामक पुत्र को प्राप्त हुई, इस राजा का कल्पक नामक मंत्री था। अनुक्रम से नंद वंश के नौ राजा हुए और उसके प्रधान भी कल्पक वंशी हुए।

चारुम्य नामक ब्राह्मणकी सहायता से चंद्रगुप्तने पगनिया किया जिससे वह पाटलीपुत्र का राजा हुआ। नंद के वंशजों ने १५५ वर्ष तक राज्य किया था, चंद्रगुप्त राजा जैनी था उसने धर्म द्वेष के कारण गुप्त राजास आदि पुत्रों में वसे पुत्र उपासित नदा है परन्तु जत्रिय उपसर्गिणी महामभाने अनेक अराजक प्रणाली द्वारा वर मिठ किया है कि चंद्रगुप्त गुप्त में ईर्ष्या जत्रिय था।

स्वामी के पास न जाकर भी उसे प्यार हुआ कि मन्त्र ! मैंने भी
 ऐसा ही तरकीब है, किन्तु उन्होंने स्वामी के पास ही जाकर
 ही चानुर्मास समीप समझा उन्होंने जोशा देखा के यज्ञ साधुओं
 विनम्र करने ही गुरुने जा सागी, गुरुने भयम्बर समझ जाया
 देरी. उन्नी समय तीन दूबरे मुनि भी सिंह की गुफा में, सर्प के निच
 में ओर कुण्ड के रूढ़त समीप चानुर्मास करने ही जाया
 ले निदने ।

स्थूलिभद्र स्वामी कोशा के घर गए, उन्हें आते देखा कर वेश्या
 ने सोचा ऐसे सुकोमल देहाले से उनसे कठिन महाप्रतीति का पालन
 किस रीति से होगा ? मेरा प्रेम अभी उनके दिल से नहीं हटा ।
 स्थूलिभद्र को समीप आते ही वेश्याने विशेष आदर घन्मान दे कदा
 स्वामिन् ! इस दासी पर महन कृपा की जो आज्ञा हो वर सुख से
 फमाईये. निर्मोही निर्मोहारी मुनि बोले, मुझे तुम्हारी चित्रशाला में
 चानुर्मास व्यतीत करना है. वेश्याने चित्रशाला सुपुर्द कर दी । पश्चात्
 स्वादिष्ट भोजन बहिराये फिर उत्तम शृंगार कर उनके सामने आ खड़ी
 हुई । पूर्वप्रेम का स्मरण कर, पूर्व भोगे हुए भोगों को याद कर वह
 वेश्या अत्यन्त ह्राव भाव दिखाने लगी । परन्तु मुनिराज तो मेरुके समान
 अटल रहे । मनमे लेश मात्र भी विकार उत्पन्न न हुआ; वरन् उस वेश्या
 को भी उपदेश दे आधिका बना लिया, चानुर्मास पूर्ण हुआ. वे गुरु
 के पास आये, वहांतक सिंह गुफा वासी आदि तीनों मुनिवर भी

इतना अधिक आहार किया कि वह मरणांतिक कष्ट पाने लगा. उस समय बड़े २ साहूकारों ने उम्र नवदीक्षित मुनि की औपधोष-चार आदि से उचित वैयावृत्त्य की. सिर्फ जैन-मुनिका वेप पहिरने से ही अपनी स्थिति में जमीन आसमान जैसा महान् अंतर हुआ देख वह बहुत आनन्दित और आश्चर्यान्वित हुआ और समभाव से वेदना सह मरकर पाटली पुत्र के राजा चद्रगुप्त का पुत्र बिंदुसार, बिंदुसार का पुत्र अशोक और अशोक का पुत्र कुणाल, कुणाल का क्षाम्प्रति नामक पुत्र हुआ ।

क्षाम्प्रति राजा को आर्य सुहस्ति महाराज के समागम से जाति स्मरण ज्ञान होगया उन्होंने श्रावक के वारह व्रत अंगीकार किये और देश देशान्तरों में उपदेशक भेज जैन धर्म की पवित्र भावनाओं का प्रचार किया, अपने राज्य में अमरपट्टहा (ढिंडोरा) बजवाया अनार्य देशों में भी गृहस्थ उपदेशक भेजकर लोग स्वर्हिषा धर्म के प्रेमी बनाये:—

एक वल आर्य सुहस्तिजी उज्जैन पनारे और भद्रा मेठानी की अधशाला में बसे भद्रा का अचंती सुकुमार नामक एक महा तेजस्वी पुत्र था—बढ़ अपनी म्रियों के साथ नदल में देव स्रश सुख भोगता था । एक समय आचार्य महाराज पाचवे देवलोड के सुकुमार विद्या का अधिकार पढ रहे थे, वह सुनकर अचरि

इतना अधिक आहार किया कि नठ मरणांतिक कष्ट पाने लगा। उस समय बड़े २ साहूकारों ने उस नवदीक्षित गुनि की औपधोपचार आदि से उचित वैयावृत्त्य की सिर्फ जैन-गुनिता वेप पहिरने से ही अपनी स्थिति में जमीन आसमान जैसा महान् अंतर हुआ देख वह बहुत आनन्दित और आश्चर्यान्वित हुआ और समभाव से वेदना सह मरकर पाटली पुत्र के राजा चंद्रगुप्त का पुत्र बिंदुसार, बिंदुसार का पुत्र अशोक और अशोक का पुत्र कुणाल, कुणाल का साम्प्रति नामक पुत्र हुआ ।

साम्प्रति राजा को आर्य सुहस्ति महाराज के समागम से जाति स्मरण ज्ञान होगया उन्होंने श्रावक के वारह व्रत अंगीकार किये और देश देशान्तरों में उपदेशक भेज जैन धर्म की पवित्र भावनाओं का प्रचार किया, अपने राज्य में अमरपट्टहा (टिंडोरा) बजवाया अन्तर्ध देशों में भी गृहस्थ उपदेशक भेजकर लोग अहिंसा धर्म के प्रेमी बनाये:—

एक वक्त आर्य सुहस्तिजी उज्जैन पवारे और भद्रा सेठानी की श्लथशाला में बतरे भद्रा का अवंती सुकुमार नामक एक महा राजस्वी पुत्र था—वह अपनी स्त्रियों के साथ महल में देव सदृश सुख भोगता था । एक समय आचार्य महाराज पाचवें देवलोक के भुङ्गना गुन्म विमान का अधिकार पढ़ रहे थे, वह सुनकर अवंति

वीरस्वामी १३ स्थंडिल स्वामी १४ जीवनर स्वामी १५ आर्य
समेद स्वामी १६ नंदील स्वामी १७ नागहस्ति स्वामी १८ रेवंत
स्वामी १९ सिद्धगणिजी २० थंडिलाचार्य २१ हेमवन स्वामी २२
नागजित स्वामी २३ गोविन्द स्वामी २४ भूतदीन स्वामी २५
छोहगणिजी २६ दुःसहगणिजी और २७ देवार्दिगणिजी क्षमा
श्रमण हुए ।

श्री वीर निर्वाण से ६८० वे वर्ष अर्थात् विक्रम संवत् ५१० में
समर्थ आठ आचार्यों ने समय सूचकता सगम्न वर्तमान प्रचलित
अरने साधन सग्रह करने का योग्य विचार किया । वल्लभीपुर (कठिया-
वाड़ में भावनगर के पास बला स्टेट है) में टाडकृत राजस्थान में
लिखे अनुमार जैनियो की घनी वस्ती थी और राज्य शासन शिलादित्य
के हाथ में था जैन धर्म को विजय धरजा फहराने वाले इस प्रसिद्ध
शहर पर वि० सं० ५२५ में पार्थियन, गेट और हूण लोगों ने
हमला किया, जिससे तीस हजार जैन कुटुम्बी वह शहर त्याग मारवाड़
में जा बसे. इस भगाभगी दुष्काल के कारण लिखा हुआ पूर्ण शुद्ध
नहीं हुआ जिससे सूत्रों की शृंखला द्विन्नभिन्न होगई फिर बौद्ध
लोगों ने भी जैनधर्म के प्रतिस्पर्धी व प्रतिपत्नी बन जैन शासन को
समुच्छेद उखाड़ डालने का प्रयत्न किया, ऐसे अनेक कारणों से श्री
भद्रबाहु स्वामी के पश्चात् विक्रम संवत् आठसौ तक अनेक जैन
विद्वान् हुए तो भी उनकी कृति हाथ नहीं लगती.

बुद्धि तीव्र एवम् निर्मल थी. जैन धर्म पर उनका अप्रतिम प्रेम था एक समय वे ज्ञानजी ऋषि के समीप उपाश्रय में आये उस समय ज्ञानजी ऋषि धर्म शास्त्र संभालने और उन्हें योग्य व्यवस्था से रखने में लगे हुए थे. उनके एक शिष्य ने सूत्र की प्राचीन जिंग् प्रतिमां देखकर शाहजी से कहा, “ आर्यकं मुंडर हस्ताक्षर इत पुस्तकों का पुनरुद्धार करने में उपयोगी नहीं होसके ? शहजी ने अत्यंत आनंद के साथ सूत्र की जिंग् प्रतिमां की प्रति लिपि करने का कार्य स्वीकार लिया (विहम संस्न १५०६ ई० सन १४५२) अपने लिये भी उन्होंने सूत्र की प्रतिया लिपि लीं. विस्तेर करते करते द्वितीय सूत्र ज्ञान होगया उनकी निर्मल और कुशल बुद्धि योग्यता की पवित्र पाशय को समझ गई. उनको ज्ञानवतु सुन जाने के बाद भाषित आठवार धर्म और वर्तमान में प्रचलने वाले धर्म की तुलना के लिये आनंद आनंद या साधन दिया, साधुओं की सेवा के लिये उनके आनंद द्वारा जैन समाज की गति उलटी दिशा में ले जाने के लिये बुद्धि युक्त बुद्धि और गत्य का साधन व्यवस्थापन के लिये उनका ज्ञानम मंदिर में प्रवचन शुरुआत हुई। प्रतिपदी रूप धारण के लिये और शक्ति तथा साधन सम्पन्न था जो भी निर्मलता के लिये व्यवहार — उपदेश देने लगे और गत्य के लिये साधन आनंद आनंद आनंद आनंद के प्रभाव से उनके लिये उपदेश के लिये प्रतिदिन चढ़ते क्षणी विन्त २ देशों के

श्रीमते अग्रगण्य श्रावक वृहत् मंड्या में उनके अनुयायी हुए, केवल श्रावक ही नहीं परंतु कितने ही यति भी उनके सटुपदेश के अन्तर से शास्त्रानुसार अग्रगण्य वर्ग आरानने तत्पर हुए, लंकाशान् स्वयम् वृद्ध होने से दीक्षित न होसके परंतु भाग्यार्थी आदि ४५ भज्य जीवों को उन्होंने दीक्षा दिला उनही सहायता से आप जैन शासन सुधारने के आपने इस पवित्र कार्य में महान् विजय प्राप्त की और अल्प समय में ही हिन्दुस्थान के एक द्वार से दूसरे द्वार तक लाखों जैसी उनके अनुयायी बने, तिस समय मूर्खों में वर्म सुधारक मार्टिन लुथर द्वारा और खुमिडन टंग से दिग्धी धर्म को जागृत किया, उभी समय या उभी माल अस्मान् जैन धर्म सुधारक श्रीमान् लौतानाह का समय मिलता है ५

लौतानाह के उदये से ४५ मनुष्य दीक्षित हुए उन्होंने अपने गुरुद्वारा लौकिकानन्द नाम अकर्म, और संत १५३१.

— About A. D. 1152 the Lanka sect arose and was followed by the others, the exact date, which coincide strikingly with the Lutheran and puritan movements in Europe

Heart of Jainism

समय २ पर धर्मगुरु जन्म होते हैं, होने हैं और जाते हैं परंतु समाज पर पवित्र और स्थिर छाप लगाने का उद्देश्य बहुत कम

ज्ञानजी ऋषि के पश्चात् आज तक गांधी नर्शान आचार्यों की गामाचली निम्न लिखित हैं.

६२ भाग्यजी ऋषि ६३ रूपजी ऋषि ६४ जीवराजजी ऋषि ६५ तेजराजजी ६६ कुंवरजी स्वामी ६७ हर्ष ऋषिजी ६८ गोधा-
जी स्वामी ६९ परशुरामजी स्वामी ७० लोकपालजी स्वामी ७१
महाराजजी स्वामी ७२ दौलतरामजी स्वामी ७३ लालचंदजी स्वामी
७४ गोविंदगामजी स्वामी हृकमीचंदजी स्वामी ७५ शिवलालजी
स्वामी ७६ उदयचंद्रजी स्वामी ७७ चौधमलजी स्वामी ७८ श्री-
लालजी स्वामी (चरित नायक) ७९ श्री जवाहिरलालजी स्वामी
(वर्त्तमान आचार्य) *

ज्ञानजी ऋषि से आजतक ४५० वर्ष का कुछ इतिहास अब वर्णन करते हैं ।

श्री महावीर की बाणी का अवलम्बन ले धर्मोद्धार का श्रीमान् लोकाशाह ने जो शुद्ध मार्ग प्रवर्त्ताया उस मार्गगामी साधु शास्त्र नियमानुसार संयम पालते, निर्वैद्य उपदेश देते, निन्दरिप्र ही रहकर प्रामानुष्यम अप्रतिषेद्ध विहारकर, पवित्र जैन शासन का उन्नोत करने थे, भाण्णजी ऋषि साधनखाजी, ऋती ऋषि तथा जीवराज ऋषिनी प्रभृति ने लोकां की सम्पत्ति त्याग दीक्षा ली थी, गन्धर्वाजी तो बादशाह अकबर के मंत्री मंडल में से एक थे, बादशाह को इन्कारी होनेपर भी पाच करोड़की सम्पत्ति त्याग वन्द्योने दीक्षा ली थी ।

प्रायः सौ वर्ष तक तो लोका गन्ध्रीय साधुओं का व्यवहार श्रेष्ठ रहा परन्तु पीछे से उनमें भी धीरे २ आचारशियिजता और अन्धधुन्धी घटने लगी ।

पूर्वजन्त अन्धशर फेलाने बाले बादल फिर बाद आये, साधु पंच महाद्वों को त्याग गटावलम्बी और परिग्रहधारी होने लगे, तथा सायण भाषा और सायण प्रिया में पयुक्त होने लगे, परन्तु उस समय भी कई अपविगत और आत्मारथी साधु विशुद्ध संयम पालते, कोटियावाह मारवाड़ पंजाब में विचरते थे और वे इन बादलों के ऊपर ने मुक्त रहे थे, गालवा मारवाड़ आदि में विचरते पृथ्व श्री हृकभीचंद्रजी महाराज का सम्प्रदाय पंच ही आत्मारथी साधुओं में से एक के पाठ पर होने से हुआ है ।

लौकशाह के पञ्चांग किर से जन से मे । नर पाये नर उ ने
 नष्ट परन के लिये गुनगन मे । किसी समय महापत्न्य के
 प्राणभय होने ही आवश्यकता हुई उस समय प्राकृतिक नियमानुसार
 धर्मसिंहजी लज्जी ऋषि और श्री धर्मदासजी जगन्नाथ के
 पञ्चांग एक यों तीन महा व्यक्ति उत्पन्न हुए, उन्होंने अद्भुत पराक्रम
 दिया लौकशाह के उपदेश का पुनरुद्धार किया, बल्कि पासन
 सुधारने का जो कार्य उन्होंने अपूर्ण छोड़ा था उसे उस त्रिपुटी मे
 पूर्ण किया, उन्होंने महावीर की आज्ञानुसार जगन्नाथ धर्म की
 अराधना प्रारंभ की, उनके विशुद्ध ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तपके
 प्रभव से तथा शास्त्रानुकूल और समयानुकूल सदुपदेश से लाखों

❧ एक अंग्रेज वानू मिन्नीस स्टीवन्सन् कि जो राज कोट में
 रहती थी अपनी Heart of Jainism (नाम पुस्तक में इस समयका
 रलेख यों करती हैं !

Firmly rooted amongst the later, they were able
 once hurricane was past to reappear oncomore and be
 gin to throw out fresh branches ..many from the Lon
 ka scob Joined this reformer and they took the name
 of Sthanakwasi, whilst their enemies called them
 Dhundhua Searchers This tillle has grown to be
 quite an honourable one

विदुष्य उनके भाऊ लोग । उस समय से उन्होंने जैन धानन का प्रभुत्व स्वीकृत किया, ता मे लौका गच्छ चति वर्ग और पंच महाजन धानी साधु ऐसे दो विभागों में जैन श्रे० पंथ बँट गया. लौका गच्छीय तथा अन्य गच्छीय का आवृत्त पंच महाजायसी साधुओं को मानने वाले तथा उनके दिगम्बे हुए मार्ग पर चलने वाले हुए से साधुगर्भी नाम से सम्बन्धित हुए सर मार्ग हुए गया तथा इनके पक्षियों में एक नये धर्म शास्त्र नहीं बनाये थे बिके शास्त्र विद्वत् ज्ञानी प्रणाली को एक शास्त्र की खाता ही थे मानने लगे, मान्याए की सम्प्रदाय भी इसी मार्ग का अनुसरण करने वाली होने मे वे भी साधुगर्भी नाम से पहिचाने जाते हैं । यदा इस सम्प्रदाय के प्रभावशाली सुदृढत्वों में मे संदे से सुदृढ २ आचार्यों का एक विद्वान् प्रयत्नोक्त करना प्रामाणिक नहीं होगा ।

श्रीः धर्मसिद्धजीः — ये मानसकर कहियामाह के रत्ना गोपालों विषय मे इनके पिता का नाम जिनदान्य और माता का नाम गिराई था, लौकागच्छी के आचार्य रत्नासिद्धी के पिता केरने मन्तराज के दरम्यान मे १४ वर्ष की उमर मे धर्मसिद्धजी हो गेसमय वे पद्म हुआ और पिता पुत्र दोनों मे योगी को विनय द्वारा मुक्त हुआ सम्बन्धन पर मान प्रस्तुत करने के विने पक्ष बैसाचमान धर्मसिद्ध जी मुनि सत्तन सद्गुणों के करने लगे, ३२ वर्षों के उमराय उपासना

... रानी में भी वे पापमात्र विनाश हुए। उनकी समझगारिणी
 शक्ति ने अणुमान करने से, शीघ्र काय्य करने से,
 दोनों हीय तथा दोनों पेश में लज्जाम पश्य कर शिष्ट गते से। यह
 मूर्खी होने के कारण एक दिन धर्मसिंहजी अणुगार सोचने लगे कि
 गुरु में पढे अनुगार माधु धर्मों से हम नहीं पालते तो रत्न
 पितामणि समान इम मानन जन्म की सार्वक्या कैसे सिद्ध होगी ?
 उन्होंने शुद्ध संयम पालने का निश्चय किया और गुरु से भी
 कायरता त्याग फटिवद्ध होने का आग्रह किया गुरुजी पूज्य पदका
 मोह न त्याग सके

अंतमें उनकी आज्ञा और आशीर्वाद भी आत्मार्थी और महाध्यायी
 यतियों के साथ उन्होंने पुनः शुद्ध दीक्षा ली (विक्रम सं. १६८५)
 धर्मसिंहजी अणुगार ने २७ सूत्रों पर (टट्ट्या) टिप्पणी लिखी। ये
 टिप्पणिया मूत्ररहस्य सरलता पूर्वक समझाने को अति उपयोगी
 हैं। विक्रम सं. १७२८ में उनका स्वर्गवास हुआ, उनका सम्प्रदाय
 दरियापुत्री के नामसे प्रख्यात है।

श्रीलक्ष्मी ऋषिः—सूरत में वीरजी बहीरा नामक एक
 श्रीमाली साहूकार रहता था, उनकी लक्ष्मी फूलवाड़ से
 नामक पुत्र हुआ लौकागच्छ के यति वजरगजी के पास उ-
 च्चयन किया और दीक्षा ली, यतियों की आचार शिथिल

दों वर्ष चाट्ट बन से प्रथक हो उनसे विक्रम संवत् १६८२ में प्रथमेश दीक्षा ली। अनेक परिपट्ट सहन किये और शुद्ध चारित्र्य पाल, जैन धर्म दिवा स्वर्ग पधार। मुनि श्री दीनतच्छपिजी तथा अमिच्छपिजी प्रभृति उनकी सम्प्रदाय में हैं।

श्रीधर्मदासजी अणुमार—ये अहमदाबाद के समीप सरखेत नाम के निवासी भावसार ज्ञानि के थे। उनके पिता का नाम जीवन कान्तिदास था। विक्रम संवत् १७१६ में उन्होंने प्रसन्न वैष्णव से दीक्षा ली और उर्मा दिन गोचरी जाते एक कुम्हारिन ने रात्र पहराई। वह थोड़ीसी मात्र में गिरी और थोड़ी दूरा में भिन्न गई। यह घृणांत इन्होंने धर्मनिहरी से कहा।

इसका उत्तर धर्मनिहरी ने फर्माया कि, जैसे द्वार पिन कोर्ट पर गाली नहीं रहता उन्ही तरह प्रायः तुम्हारे शिष्यों के शिवा कोर्ट प्रांग गाली न रहेगा और द्वार दूरा में फैल गई इन्ही तरह तुम्हारे शिष्य प्रायः और धर्म का प्रचार करेंगे। धर्मदासजी के ६६ शिष्य हुए जिन्होंने देश देशान्तरों में जैनधर्म की अत्यन्त सुशोभित की गई ६६ शिष्यों में से ६८ वां गणना, नामदास, ये महात्मा गणना में विपरीत और जैनधर्म की प्रजा फइगने थे, विर्य एक मुन्यंशु की स्वामी मुन्यंशु में रहे उन्होंने मुन्यंशु में पूरा कर जैन धर्म का अत्यन्त प्रचार किया। मुन्यंशु की स्वामी के ७ शिष्य हुए वे भी जैन शासन को दिवाने वाले हुए, उनके नाम गाँवे शिष्य अनुसार हैं।

१ गुणावच्छेदो २ पंचांगजी ३ ताराजी ४ नन्दजी ५ तारागी
 ६ विद्वज्जी और ७ भूषणजी उनके शिष्यों ने आदिपाठ
 में १ तीवरी २ गौरीज ३ ताराता ४ पाठ कौटी ५
 नृज ६ धाराता ७ मायता ऐसे ७ मन्त्रों स्थापित किये ।

गुणावच्छेदो के शिष्य बालजी स्वामी, बालजी स्वामी के शिष्य
 हीराजी स्वामी, हीराजी स्वामी के शिष्य कानजी स्वामी और
 कानजी स्वामी के शिष्य अजरामरजी स्वामी हुए । ये अजरामरजी
 महामन्त्री और पंडित पुरुष हुए । उनके नाम से वर्तमान में तीवरी
 संप्रदाय (सवाड़ा) प्रख्यात है ।

श्री दौलतरामजी तथा श्री अजरामरजी—ये दोनों
 महात्मा ममकालीन थे । दौलतरामजी ने स. १८१४ में और अजरा-
 मरजी ने १८१६ में दीक्षा ली थी । श्री दौलतरामजी महाराज पू०
 हुकमीचन्द्रजी महाराज के गुरु के गुरु थे, वे अति समर्थ विद्वान
 और सूत्र सिद्धान्त के पारंगामी थे, मालवा, मारवाड़, मोंये विस्-
 रने और इसी प्रदेश को पावन करते थे, उनके असाधारण ज्ञान
 सन्धित्त का प्रशंसा श्री अजरामरजी स्वामी ने सुनी । अजरामरजी
 स्वामी का ज्ञान भी बड़ा चढ़ा था तो भी सूत्र ज्ञान में अधिक
 उत्तम करने के लिये श्री दौलतरामजी महाराज के पास अभ्यास
 करने की उनकी इच्छा हुई । इस पर मे लीवड़ी संघने एक खाम

मनुष्य के साथ दौलतरामजी महाराज की सेवा में प्रार्थना पत्र भेजा आचार्य प्रवर श्री दौलतरामजी महाराज उस समय बूंदी कोटे विराजते थे। उन्होंने इस विक्षमि को सहर्ष स्वीकृत कर काठियावाड़ की ओर विशार किया। यह भेजा हुआ मनुष्य भी अहमदाबाद तक पूज्य श्री के साथ ही था परंतु वहां से यह पृथक् हो लॉपड़ी संघ की पूज्य श्री के पधारने की प्रार्थना देने आया। उस समय लॉपड़ी संघ के आनंद का पार न रहा, लॉपड़ी संघने उस मनुष्य को न० १२५०) प्रार्थना में भेट दिये। पूज्य श्री दौलतरामजी लॉपड़ी पधारने तब वहां के मंत्र ने उनका अत्यन्त पादर सत्कार किया।

लॉपड़ी संघ की अनुपम गुरुभक्ति देखकर दौलतरामजी महाराज भी भी आनंदार्य हुए। पंदिन श्री अजरामरजी स्वामी पूज्य श्री दौलतरामजी महाराज से मूत्र सिद्धांत का रहस्य समझने लगे। सम्पित्त सार के कर्मा पं० मुनि श्री जेठमलजी महाराज इस समय पाठनपुर विराजते थे वे भी शास्त्राध्ययन करने के लिये लॉपड़ी पधारने और वे भी ज्ञान गोष्ठी के अपूर्व आनंद का अनुभव करने लगे। भिन्न २ सम्प्रदाय के साधुओं में परस्पर उन समय विद्वाना प्रेमभाव का और साधुओं में ज्ञान विषया विद्वाना तीन थी यह इस पर मे स्पष्ट सिद्ध है। प० लॉ० दौलतरामजी महाराज के साथ २ विद्वाने ही समय नष्ट विचार कर पं० श्री अजरामरजी महाराजने मूत्र ज्ञान में अपरिमित अभिरुचि की थी और पूज्य श्री दौलतरामजी

महाराज के आग्रह में पूज्य श्री लालचंद्रजी महाराजने जगद्गुरु
में एक आनुमीन भी उनके मांग किया था ।

पूज्य श्री हनुमन्तन्त्रजी स्वामी—पूज्य श्रीलालचंद्रजी महाराज
के पञ्चम श्रीलालचंद्रजी महाराज आचार्य हूँ, और उनके पाद
पर परम प्रतापी पूज्य श्री हनुमन्तन्त्रजी महाराज का टोला (रायगिरी
के) प्राप्त के रहने वाले थे जोमनाल गुरुस्थ थे उनका गोत्र तपनीन
था. पृंती शहर में सं० १८७६ में मार्गशीर्ष मास में पूज्य श्रीलाल
चंद्रजी स्वामी के पास उन्होंने प्रबल बेराग्य से दीक्षा ली । २१ वर्ष
तक उन्होंने बेलें २ तप किया चाहे जितने कष्टक शीत में भी वे
सिर्फ एक ही चादर ओढ़ते थे, शिष्य बनाने का उनके सर्वथा
त्याग था, उमने सब मिठाई भी खाना त्याग दी थी । सिर्फ तरह
द्रव्य रखकर बाकी के सब द्रव्यों का यावज्जीव पर्यंत त्याग किया
था वे बिल्कुल कम निद्रा लेते और रात दिन स्वाध्याय और
ध्यानादि प्रवृत्ति में ही लीन रहते थे. नित्य २०० नमोऽर्चुणं गिनते
थे, आप समर्थ विद्वान् होते भी निरभिमानी थे. कोई चर्चा करने
आता तो अपने आज्ञावर्ती साधु श्रीशिवलालजी महाराज के पास
भेज देते, अपने गुरु पूज्य श्री लालचंद्रजी महाराज शास्त्रानुसार
सख्त आचार पालने के लिये बार बार विनय करते रहते परन्तु
अपनी विनय अस्वीकृत होने से पृथक् विद्वरने लगे और तप
पादि में वृद्धि करने लगे, इससे गुरुजी उनका अति निंदा

करने लगे, किसीने उनको आहार पानी देना नहीं, उपदेश
 सुनना नहीं तथा उतरने के लिये स्थान भी नहीं देना ऐसे २
 उपदेश देने लगे, क्षमा के सागर श्री हुकमीचंद्रजी महाराज ने इस
 पर तनिक भी लज नहीं दिया वे तो गुरु के गुणानुवाद ही करते
 और कहते थे कि मेरे तो वे परम उपकारी पुरुष हैं नष्ट
 भाग्यवान हैं मेरी आत्मा ही भारी कर्मा है। इस तरह वे गुरु
 प्रशंसा और आत्मनिंदा करते थे तो भी गुरुजी की ओर
 शोर से वाद्वाग्म के प्रहार होते ही रहे यां करते २ चार वर्ष
 बीत गए, परंतु वे गुरु के विरुद्ध कदापि एक शब्द भी न
 बोले। चार वर्ष बाद गुरु को आप ही आप पश्चात्ताप होने
 लगा और वे भी निंदा के बदले स्तुति करने लगे। अंत में
 स्वप्नदयान में प्रकट तौर पर फरमान लगे कि हुकमीचंद्रजी तो चौधे
 आरे के नभूने हैं वे पवित्रात्मा और उच्चम माधु हैं वे अद्भुत
 क्षमा के भंडार हैं। मैंने चार वर्ष तक उनके अच्युत गाने में धुटि
 न करती परंतु उनके बदले उन्होंने मेरे गुण गान करने में कभी
 नहीं की। भय है मेरे मत्पुरुष को। सोमान हुकमीचंद्रजी महाराज
 का गुण समूहस्वर सूर्य मद्यः प्रकाशित था, तिनमें लोगों की
 पहिले से ही वनपरपूर्य भाक्ति थी ही फिर आपाये भी के
 उद्गारों का अनुमोदन मिलने ही वनही चरातुंदुभी दशही दिशाओं
 में गूँहने लाग गई। उन्होंने अपनी सुन्त्रशाय में कियेदार किया

तब से यह सम्प्रदाय उनके नाम से प्रसिद्ध हुई और पहिचानी जाने लगी । उनके अक्षर मोती के दाने जैसे थे. उनकी हस्तलिखित १६ सूत्रों की प्रतियां इस सम्प्रदाय में अब भी वर्तमान हैं । सं० १६१७ के वैशाख शुद्ध ५ मंगलवार को जात्रद ग्राम में देहोत्सर्ग कर ये पवित्रात्मा स्वर्ग पधारे ।

श्रीयुत ग्योहट संत्य फरमाते हैं कि, “ काल से भी अविच्छिन्न हो ऐसा कोई प्रतापी और प्रौढ स्मारक मृत्युवाद छोड़ जाना उचित है कि जिससे देह नश्वर होने से नाश होजाय तो भी उस स्मारक के कारण हमेशा जीवित रहे और वही वास्तविक कीर्ति का फल है ऐसे महाराज—महापुरुष विरले ही जन्म लेते हैं ।

पूज्य शिवलालजी स्वामी—श्री हुकमचंद्रजी महाराज के पाट पर शिवलालजी महाराज विराजे उन्होंने सं० १८६१ में दीक्षा ली थी, वे भी महा प्रतापी थे, उन्होंने ३३ वर्ष तक लगातार अखण्ड एकांतर की. वे सिर्फ तपस्वी ही नहीं थे, परंतु पूर्ण विद्वान् भी थे, स्व परमत के ज्ञाता और समर्थ उपदेशक थे उन्होंने भी जैन शासन का अच्छा उद्योग किया और श्री हुकमीचंद्रजी महाराज की सम्प्रदाय की कीर्ति बढ़ाई सं० १६३३ पोष शुक्ल ६ के रोज उनका स्वर्गवास हुआ ।

पूज्य श्री उदयसागरजी स्वामी—इन महात्मा का जन्म जोधपुर निवासी ओसवाल गृहस्थ सेठ नथमलजी की पतिव्रत

परायणा भार्या श्री जीवु बाई के उदर से सं० १८७६ के पोप-माह में हुआ, सं० १८६१ में इनका व्याह परमोत्साह से किया गया, व्याह होने के कुछ ही समय पश्चात् उन्हें संभार की ज़खारता का भान होने के कारण स्फुरित हुआ, सब सम्बन्ध परित्याग करने की अभिलाषा जामून हुई परंतु माता पिता कुटुम्बादिको ने शीघ्रा होने की आज्ञा न दी। इसलिये भावक प्रत धारण कर साधु का वेप पदन भिक्षाचारी करते प्रामाण्यमम विचरने लगे, कुछ समय को देशाटन करने के पश्चात् माता पिता की आज्ञा मिलते ही इन्होंने सं० १६७८ के श्वेत शुक्र ११ के रोज पूज्य श्री शिवलालजी महाशय के सुरिधय हर्षचंद्रजी महाशय के पास दीक्षा धारण की और गुरु गण से ज्ञान ग्रहण करने लगे। इनकी शरण शक्ति अद्भुत और सुदृढ़ बन आया था। थोड़े ही समय में इन्होंने ज्ञान और चारित्र्य की अभिक ही उत्पन्न की, इनकी उपदेश शैली अनूत्तम थी इसलिये पूज्य भी जहां २ पधारगे वहां २ वनके सुन्दर कमल की वाणी सुनने के लिये रगनी जन्यमणी हिन्दू मुसलमान प्रभृति अपिक संख्या में आते थे, उनकी शारीरिक मर्यादा अति आकर्षक थी, गौरवर्ण, दीप्त कंठि विगात भाल, प्रकाशित बड़े नेत्र, अट्ट समान मनोहर एदन और तप्यज्ञान गत अमृत समान निष्ठ भावों की धारणा से सब श्रोत मनुष्य पर आदर्य प्रभाव डालने में पूज्य भी संशय में अटक रावल रिही तब यमारे से और सब अज्ञान मुक्त

में थी अपना प्रभाव दिखाया था, कई राजाओं को सदुपदेश दे शिकार और मांस मदिरा छुड़ाई और अहिंसा धर्म की विजय ध्वजा फहराई थी-।

पूज्य श्री के आचार विचारः— पूज्य श्री के हृदय की प्रतिच्छाया वर्तमान के उनके साधु हैं ' छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति ' मोह, या प्यार में जो लेश मात्र स्वतंत्रता दीजाती है वही स्वतंत्रता फिर स्वच्छंदता के स्वरूप में परिणित होजाती है और जिसका फल भयंकर असह्य और अक्षम्यदोष उत्पन्न करता है. ये कारण प्रत्यक्ष रखकर किसीभी शिष्य को स्वच्छंदी बनने न देते.

भिन्न २ प्रकृति के साधु एकत्रित हो उस सम्प्रदाय को शुद्ध समय की सीमा में रखना सरल कार्य नहीं है । अनंतानुबंधी की चौकड़ी के बंधन में फसते हुए मुक्ति को मुक्त करने के लिये वे स्तुत्य प्रयास करते थे । सूत्रों के रहस्य को न्यायपूर्वक यों समझाते थे किः--

* असंचुडेण भंते ! अणगारे, सिज्झई, वुज्झइ, मुच्चइ, परिनि-
व्वायइ, सव्वदुक्खाणमंतं करेइ गोयमा ! नो इण्णहे समेट्ठे से के गट्ठेणं
भंते ! जाव अनंतं करेइ गोयमा ! असंचुडे अणगारे आउयवज्जाओ

* भावार्थः—गृह भारका त्याग किया परन्तु आभारिक आश्रम
द्वार त्रिषने नहीं गेके ऐमे पामंड सेवी साधु भवतीजरूर कर्म

में थी अपना प्रभाव दिखाया था, कई राजाओं का सदुपदेश दे शिकार और मांस मदिरा छुड़ाई और अहिंसा धर्म की विजय ध्वजा फहराई थी-।

पूज्य श्री के आचार विचार:— पूज्य श्री के हृदय की प्रतिच्छाया वर्तमान के उनके साधु हैं 'छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति' मोह, या प्यार में जो लेश मात्र स्वतंत्रता दीजाती है वही स्वतंत्रता फिर स्वच्छंदता के स्वरूप में परिणित होजाती है और जिसका फल भयकर असह्य और अक्षुण्णदोष उत्पन्न करता है. ये कारण प्रत्यक्ष रखकर किसीभी शिष्य को स्वच्छदी बनने न देते.

भिन्न २ प्रकृति के साधु एकत्रित हो उस सम्प्रदाय को शुद्ध समय की सीमा में रखना सरल कार्य नहीं है । अनंतानुबंधी की चौकड़ी के बंधन में फसते हुए मुक्ति को मुक्त करने के लिये वे स्तुत्य प्रयास करते थे । सूत्रों के रहस्य को न्यायपूर्वक यों समझते थे कि:--

ॐ असंबुद्धेण भते ! अणगारे, सिञ्जई, बुञ्जई, मुच्चई, परिनि-
व्यायई, सब्बदुक्खाणं नंतं करेइ गोयमा ! नो इण्णहे समेठ्ठे से के गठ्ठेणं
भते ! जाव अनंतं करेइ गोयमा ! असंबुद्धे अणगारे आउयवज्जाओ

ॐ भाषार्थ:—गृह भारका त्याग किया परन्तु प्राकृतिक आश्रय
द्वारा निवृत्त नहीं होके ऐसे पाश्चांड क्षेत्री साधु भवनीजरूप कर्म

मे लोगों को ठगना या ठगाने देना या फंफाने देना यह महा पाप अन्धर्म और निर्बलता है । सम्प्रदाय की यह अपेक्षाओं आगे गंभीर और भयकर परिणाम पैदा करेगी।

शास्त्र सत्य कहते हैं कि, इंद्रिय और मनको वश रखना यही आत्मा की पहिचान का सरल और उत्तम उपाय है । मानसिक संयम से पापपुंज नहीं बढ़ता मन विकारी होकर दूषित हुआ कि, मानसिक पाप हो चुका इसलिये साधुधर्म के संरक्षणोंमत्त संयम के नियम योजित किये हैं इस अंकुश का दुःस्वरूप समझने वालों का दुःस्वप्न हालत से हाल हवाल हो जाते हैं अनेक आकर्षणों में फंफाने से भ्रम हार जाते हैं निरंकुश स्वतंत्रता में साधुओं में स्वच्छंदता, फलह और दुःख भिवाय दूधरे परिणाम भाग्य से ही प्राप्त होते हैं ।

ऐसे सबल कारणों का दीर्घ दृष्टि से विचारकर पूज्य श्री ने सम्प्रदाय के कितने एक साधुओंके साथ आहार पानी का सम्बन्ध तोड़ा था । जिसका चेप अभी तक वर्तमान है । चरित्र शिथिलता के चेप का फलताव रोकने के लिए ऐसे रोगियों को दृढ़ चिकित्सा कर मधे रास्ते लगाने का पूज्य श्री का प्रयास कहु काढ़ के सदृश होने से छूट छाट मांगने वाले मुनि नामधारी पूज्य श्री के वैयावृत्यसे भी अधिकृत होने लगे ।

से लोगों को ठगना या ठगाने देना या फसाने देना यह महा पाप अन्धर्म और निर्मलता है। सम्प्रदाय की यह नेपथ्याही आगे गभीर और भयकर परिणाम पैदा करेगी।

शास्त्र सत्य कहते हैं कि, इंद्रिय और मन को वश रखना यही आत्मा की पहिचान का सरल और उत्तम उपाय है। मानसिक संयम से पापपुंज नहीं बढ़ता मन विहारी होकर दूषित हुआ कि, मानसिक पाप हो चुका इसलिये साधुधर्म के संरक्षणात्मक संयम के नियम योजित किये हैं इस अकुश को दुःस्वरूप समझने वालों का दुःखमय हालत से हाल हवाल हो जाते हैं अनेक आर्कषणों में फंसाने से भय हार जाते हैं निरंकुश स्वतंत्रता से साधुओं में स्वच्छंदता, फलह और दुःख सिवाय दूसरे परिणाम भाग्य से ही प्राप्त होते हैं।

ऐसे सबल कारणों का दीर्घ दृष्टि से विचारकर पूज्य श्री ने सम्प्रदाय के कितने एक साधुओं के साथ आहार पानी का सम्बन्ध तोड़ा था। जिसका चेप अभी तक वर्तमान है। चरित्र शिथिलता के चेप का फैलाव रोकने के लिए ऐसे रोगियों को दृढ़ चिकित्सा कर सचे रास्ते लगाने का पूज्य श्री का प्रयास कटु काढ़े के सदृश होने से छूट छोट मांगने वाले मुनि नामधारी पूज्य श्री के वैयावृत्यसे भी वंचित होने लगे।

एक से दूसरे पर विचार करने वाला, "गर्भ" का : मोल उतार, यह जैन नाम को उतार दे, मात मा गाभीजी ही सलाह तो यह है कि, वेग से मनाओ, भूलें बनाओ, संशु गोंगनों में बनाओ और उन प्रज्ञा में गिरने लोगों का हाथ पकड़ो, एलील में समझाओ ममत्व का नशा उतारकर भाव गले उतारो, मन्यमत की प्रकृता में उस वेग को रोको परंतु यत्नान्कार मत करो ।

समाज की मुख्यवस्था यह माधुओं की पहरेदारी का ही प्रताप परिणाम है । समाज के नेता मुनिराज को निष्पक्षपात से उपरोक्त सलाह देवे रहने से ही साधुभमाज की कीर्ति ध्वजा पहराती रहेगी ।

खुशामद यह गुप्त विष है । मनुष्य मात्र भूल का पात्र है । भूल करने वाला फिर से ऐसी भूल न करे ऐसे समझाने वाले ऐसे कर्तव्य अदा करने वाले को अपना शुभेच्छुक समझना चाहिये परंतु पक्षांध हो, की हड्डि, भूल को छुपा गुन्हगारों को मदद करना गुन्हा बढ़ाने जैसा महापाप है. यह प्रवृत्ति तो अपराध करने वाले को उत्तेजना के समान है । यह पक्षपात मोह श्रेष्ठ से श्रेष्ठ और समर्थ मनुष्यों में भी गुप्त विष फैलाकर गिराकर कितना मत भेद उत्पन्न करता है जिसके शोचनीय दृष्टांत अपनी आंखा आगे मौजूद हैं ।

रोगी को विश्वास दे पाल पपोल कर मुख्य धंश प्रकट करने

... भूल कराने वाला फिर से ऐसी भूल न करे ऐसे समझाने वाले ऐसे कर्तव्य प्रदा करने वाले को अपना शुभेच्छुक समझना चाहिये परन्तु पक्षाघ हो, की हुई, भूल को छुपा गुन्हगारों को मदद करना गुहा बढ़ाने जैसा महापाप है. यह प्रवृत्ति तो अपराध करने वाले को उन्नेजना के समान है। यह पक्षपात मोह श्रेष्ठ से श्रेष्ठ और समर्थ मनुष्यों में भी गुप्त विष फैलाकर गिराकर कितना मत भेद उत्पन्न करता है जिमके शोचनीय दृष्टांत अपनी आंखा आगे मौजूद हैं।

समाज की मुख्य समस्या यह साधुओं की पदरेखरी का ही प्रयाप परिग्राम है। समाज के नेता मुनिराज को निष्पक्षपात से उपरोक्त सलाह देते रहने से ही साधुसमाज की कीर्ति स्वजा पहराती रहेगी।

खुशामद यह गुप्त विष है। मनुष्य मात्र भूल का पात्र है। भूल करने वाला फिर से ऐसी भूल न करे ऐसे समझाने वाले ऐसे कर्तव्य प्रदा करने वाले को अपना शुभेच्छुक समझना चाहिये परन्तु पक्षाघ हो, की हुई, भूल को छुपा गुन्हगारों को मदद करना गुहा बढ़ाने जैसा महापाप है. यह प्रवृत्ति तो अपराध करने वाले को उन्नेजना के समान है। यह पक्षपात मोह श्रेष्ठ से श्रेष्ठ और समर्थ मनुष्यों में भी गुप्त विष फैलाकर गिराकर कितना मत भेद उत्पन्न करता है जिमके शोचनीय दृष्टांत अपनी आंखा आगे मौजूद हैं।

रोगी को विश्वास दे पाल पपोज कर मुख्य अंश प्रकट करने

यह वेदों में भी मिलता है, यहाँ भी वेदों में ही बताया है।
 यह वेदों में भी मिलता है, यहाँ भी वेदों में ही बताया है।
 यह वेदों में भी मिलता है, यहाँ भी वेदों में ही बताया है।
 यह वेदों में भी मिलता है, यहाँ भी वेदों में ही बताया है।
 यह वेदों में भी मिलता है, यहाँ भी वेदों में ही बताया है।
 यह वेदों में भी मिलता है, यहाँ भी वेदों में ही बताया है।
 यह वेदों में भी मिलता है, यहाँ भी वेदों में ही बताया है।
 यह वेदों में भी मिलता है, यहाँ भी वेदों में ही बताया है।
 यह वेदों में भी मिलता है, यहाँ भी वेदों में ही बताया है।
 यह वेदों में भी मिलता है, यहाँ भी वेदों में ही बताया है।

समाज की मुख्य समस्या यह साधुओं की पहरेदारी का ही प्रताप
 परिणाम है। समाज के नेता मुनिराज को निष्पक्षपात से उपरोक्त
 सलाह देते रहने से ही साधुसमाज की कीर्ति ध्वजा पहराती
 रहेगी।

खुशामद यह गुप्त विष है। मनुष्य मात्र भूल का पात्र है।
 भूल करने वाला फिर से ऐसी भूल न करे ऐसे समझाने वाले ऐसे
 कर्तव्य अदा करने वाले को अपना शुभेच्छुक समझना चाहिये परंतु
 पक्षपात हो, की हुई, भूल को छुपा गुन्हगारों को मदद करना गुहा
 बढ़ाने जैसा महापाप है। यह प्रवृत्ति तो अपराध करने वाले को
 उत्तेजना के समान है। यह पक्षपात मोह श्रेष्ठ से श्रेष्ठ और समर्थ
 मनुष्यों में भी गुप्त विष फैलाकर गिराकर किन्ना मत भेद उत्पन्न
 करता है जिम्के शोचनीय दृष्टांत अपनी आंखा आगे मौजूद हैं।

विश्वास दे पाल पपोल कर मुख्य अंश प्रकट करने

एक ने दूसरे पर भिष्या कलंक लगाना, अनर्थ दण्ड सेवन करना, यह जैत नाम को लजाता है, माइत्गा गांधीजी की सलाह तो यह है कि, प्रेम से मनाओ, भूलों बताओ, खड़े खोसलों से बचाओ और उन खरों में गिरने वालों का हाथ पकड़ो, दर्ल ल से समझाओ ममत्व का नशा उतारकर बात गले उतारो, सत्यमत की प्रमत्ता से उस वेग को रोको परंतु बलात्कार मत करो ।

समाज की सुव्यवस्था यह साधुओं की पहरेदारी का ही प्रताप परिणाम है । समाज के नेता मुनिराज को निष्पक्षपात से उपरोक्त सलाह देते रहने से ही साधुसमाज की कीर्ति ध्वजा पहराती रहेगी ।

खुशामद यह गुप्त विष है । मनुष्य मात्र भूल का पात्र है । भूल करने वाला फिर से ऐसी भूल न करे ऐसे समझाने वाले ऐसे कर्तव्य अदा करने वाले को अपना शुभेच्छुक समझना चाहिये परंतु पक्षांध हो, की हुई, भूल को छुपा गुन्हगारों को मदद करना गुहा बढ़ाने जैसा महापाप है यह प्रवृत्ति तो अपराध करने वाले को उन्नेगना के समान है । यह पक्षपात मोह श्रेष्ठ से श्रेष्ठ और समर्थ मनुष्यों में भी गुप्त विष फैलाकर गिराकर हिरना मत भेद उत्पन्न करता है जिबके शोचनीय दृष्टांत अपनी आंखों आगे मौजूद हैं ।

रोगी को विश्वास दे पाल पपोज कर मुख्य थंश प्रकट करने

कर उसे सुधारना वुरों का भला कर देना ये दैवी मनुष्य है, दिल की इच्छाएँ घमंड से नम्रता में उतरी कि भूत सुधारने की दृश्य प्रेरणाओं का मनका प्रारंभ हुआ ।

“ अपने देशमें समाज राज बल और तपो बल ऐसे दो ही बलों को पहचानती है और इसमें भी तपोबल की प्रतिष्ठा अधिक समझती है । यह अपने समाज की विशेषता है, मनुष्य विषय वासना के अधीन जितना भी कम होगा उतना ही उसका जीवन सादा और संयमी होगा उतनी ही उसकी तपश्चर्या होगी, स्वार्थ और विलास की पामरता जिस के हृदय पर कम है वह उतने ही प्रमाण में तपस्वी है । ज्ञान और तपश्चर्या इन दोनों का संयोग ऐश्वर्य है ।

कान के कड़े खिगने वाले निदर की निंदा न करते उस के बंधन वाले पाप कर्मों के लिये दया लाना और उसे सद्बुद्धि उत्पन्न हो ऐसी भावना लाना और यह भावना सफल हो ऐसा प्रयाम करना यही सच्ची वीरता, यही हमारे अरिहंत भगवंत का अनुभव किया हुआ सच्चा मार्ग है ।

आसीद्यथा गुरुमनोहरये समर्था ।

त्वत्येमवृत्तिरनघा न तथा परेषाम् ॥

रत्ने यथाऽऽदरमतिर्मणिलक्षकाणां

नवं तु काच शकूलोऽकिरणाकुलोऽपि ॥

कर उसे सुधारना बुरों का भला कर देना ये दैवी मनुष्य है, दिल की इच्छाएं घमंड से नम्रता में उतरतीं कि भूज सुधारने की दृश्य प्रेरणाओं का मनका प्रारंभ हुआ ।

“ अपने देशमें समाज राज बल और तपो बल ऐसे दो ही बलों को पहचानती है और इसमें भी तपोबल की प्रतिष्ठा अधिक समझती है । यह अपने समाज की विशेषता है. मनुष्य विषय वासना के अधीन जितना भी कम होगा उतना ही उसका जीवन सादा और संयमी होगा उतनी ही उसकी तपश्चर्या होगी. स्वार्थ और विलास की पाभरता जिस के हृदय पर कम है वह उतने ही प्रमाण में तपस्वी है । ज्ञान और तपश्चर्या इन दोनों का संयोग ऐश्वर्य है ।

कान के कीड़े खिगाने वाले निदक की निंदा न करते उस के बंधन वाले पाप कर्मों के लिये दया लाना और उसे सद्वृद्धि उत्पन्न हो ऐसी भावना लाना और यह भावना सफल हो ऐसा प्रयास करना यही सच्ची वीरता, यही हमारे अरिहंत भगवंत का अनुभव किया हुआ सच्चा मार्ग है ।

आसीद्यथा गुरुमनोहरये समर्था ।

त्वत्प्रेमवृत्तिरनघा न तथा परेषाम् ॥

रत्ने यथाऽऽदरमंतिर्मणिलक्षकाणां

नैवं तु काच शकलेकिरणाकुलेऽपि ॥

कर उसे सुवारना वुरों का भला कर देना ये देवी मनुष्य है, मिल की उच्छ्राए घमंड से नम्रता में उतरी कि भूज सुगारने ही हृदय प्रेरणाओं का मनका प्रारंभ हुआ ।

“ अपने देशमें समाज राज बल और तपो बल ऐसे दो ही बलों को पहचानती है और इसमें भी तपोबल की प्रतिष्ठा अधिक समझती है । यह अपने समाज की विशेषता है. मनुष्य विषय वासना के अवीन जितना भी कम होगा उतना ही उसका जीवन सादा और संयमी होगा उतनी ही उसकी तपश्चर्या होगी, स्वार्थ और विलास की पामरता जिस के हृदय पर कम है वह उतने ही प्रमाण में तपस्वी है । ज्ञान और तपश्चर्या इन दोनों का संयोग ऐश्वर्य है ।

कान के कीड़े खिगाने वाले निंदक की निंदा न करते उस के बंधन वाले पाप कर्मों के लिये दया लाना और उसे सद्बुद्धि उत्पन्न हो ऐसी भावना लाना और यह भावना सफल हो ऐसा प्रयास करना यही सच्ची वीरता, यही हमारे अरिहत भगवंत का अनुभव किया हुआ सच्चा मार्ग है ।

आसीद्यथा गुरुमनोहरये समर्या ।

त्वत्प्रेमवृत्तिरनया न तथा परेषाम् ॥

रत्ने यथाऽऽदरमतिर्मणिलक्षकाणां

नयं तु काच शकलेकिरणाकुलेऽपि ॥

(६५)

सनातनाती पद्धि श्री रत्नचन्द्रती महाराज—नामिक—मोती-
शेरा. पत्रा, परम्बने पाले जौदरी का गन कौमती रत्नों पर जका
आकर्षित होना है अतना सूर्य के प्रकाशमें प्रकाशित काच के टुकड़े
(वा इमिशन गो लन्पे से भी बाध दिवावट में विशेष सुन्दर
दिखते हैं) के उरफ लवा आकर्षित होना ।



पञ्च श्री श्रीलालाजी ।

म भाग ३ वा ।

शाल्व जीवित ।

राजपूताने के पृथीय नाम नर क राजा ११११ १२००
नाम का एक नगर बहुत प्राचीनकाल में था । यह २५ मील
पुर से दक्षिण की ओर ६० मील दूर है । १७०० में १७२७ में
जय प्रयाग अमीरों ने राजपूताने में एक नया राज्य की
स्थापना की तब उनसे राजधानी का शहर बनाया । राजपूताने में
सबसे पीछे जो छोटे राज्य स्वयंसे दुरा जा रही राज्य । दोह मा
धोरस माइल का इका प्रसार है । उसका कितना ही भाग
राजपूताने में और कितना ही मात्रा में है । दोह के राज्यकर्ता
अफगान जाति के रोहिजा पठान हैं और वे नमन की पंजी में

सदृश विश्व में प्रख्यात हुआ । जबतक जीविन रहे इस पृथ्वी पर चन्द्र की तरह अमृत वर्षाते रहे, शीतलता प्रवाहित करते रहे और अनेक भव्यात्माओं के हृदय-कमल को विकसित करते रहे । जिनका नाम भीलाल रक्खा गया । पुत्र के लक्षण पालने में दिखाये, सूर्य के प्रकट होते ही उसकी सुनहरी किरणें ऊँचे से ऊँचे पर्वत के मस्तक पर जा बैठती हैं इसी तरह इस बालक की प्रतिभा ने आप्त जनों के अन्तःकरण में उच्च स्थान प्राप्त किया था । इसकी वेजस्विता, मनोहर वदन, शरीर की भव्याकृति, विशाल भाल, प्रकाशित नेत्र इत्यादि लक्षण स्वाभाविक रीति से ऐसी सूचना देते थे कि यह बालक आगे-जाकर कोई महान् पुरुष निकलेगा ।

सूर्यास्त हुए थोड़ा ही समय बीता था । उस समय उन्हें स्वप्नावस्था में एक देदीप्यमान कांतिवाला गोला दूर से अपनी ओर आता हुआ दिखाई दिया । थोड़े ही समय में वह विलकुल समीप आ पहुँचा । ज्यों-२ वह समीप आता गया त्यों-२ उसका प्रकाश भी बढ़ता गया । माजी आश्चर्य चकित हो गईं प्रकाश के मध्य स्थित कोई मूर्ति मानो कुछ कह रही हो ऐसा भास हुआ परन्तु असाधारण प्रकाश से उनके हृदय पर इतना अधिक लोभ हुआ कि मूर्ति ने क्या कहा उसकी स्मृति न रही धड़कती छाती से वे जग पड़ी और पति के पास जाकर सब हकीकत निवेदन की ।

मूल में मत्स्यरत्ना, सरस स्वभावी और सामाजिक विगा
 की तरह इनकी कीर्ति थी। विद्यागुरुओं के वे पीनिपात्र थी
 आसीं थे। श्रीलालजी के उच्च गुणों से गुम्ह हूए महाभ्या
 नसे पूर्ण प्रेम रखने थे और सम्मान देने थे। इतना ही न
 रन्तु उनके नाना गुणों की सब कोई विशुद्धभाव से श्लाघा कर
 ।। अपने विद्यागुरु की ओर श्रीलालजी का प्रेमभाव भी प्रसंश
 त्र था और शाला छोड़ने के पश्चान भी वैसा ही प्रेम कायम र
 सका एक उदाहरण यहां देते हैं।

सं० १९४४ में अपनी अठारह वर्ष की अवस्था में ज
 ण्होंने अपने मित्र गुजरमलजी पोरवाल के साथ स्वयं दीक्ष
 प्रगोष्ठ की तब उन्हें प्रायः सात तोले की एक सोने की कंठ
 प्रेध्यापक महाशय को इनायत की थी।

उदाहरण इन महापुरुष के जीवनचरित्र में स्थान स्थान पर दृश्यमान हैं ।

श्रीलालजी का स्वभाव बहुतही कोमल और प्रेम पूर्ण होने से उनके बालभनेहियों की संख्या भी अधिक थी । उनके साथ उनका वर्ताव बडाही उदार था । श्रीलालजी के उत्तम गुणोंकी छाप मित्रममूर्ति पर जादूसा असर करती थी वच्छराजजी और गुजरमलजी पोरवाल ये दोनो उनके स्व.स मित्र थे । श्रीलालजी के वैराग्यमे इन दोनो मित्रों के हृदय पट पर गहरी छाप लगी थी और इसीसे उन्होंनेभी उनके साथ संसार परित्याग कर आत्मोन्नति साधन करने का दृढ संकल्प किया था. परन्तु पीछे मे वच्छराजजी को आज्ञान मिलनेमे उसी तरह संयोगो की प्रतिकूलता होने से दीक्षा न ले सके और गुजरमलजी ने श्रीलालजी के साथ ही दीक्षा ली । श्रीलालजी के प्रति इनका अत्यन्त पूज्यभाव था ।

स्कूल के श्रीलालजी के सहाध्यायी उन्हें इतना चाहते थे कि जब वे स्कूल छोड़कर अलग हुए तब आंखों मे अश्रु लाकर रुदन करने लगे थे. उनके मित्र उनका वियोग सहन नहीं कर सके थे उनकी सत्यनिष्ठा, कर्तव्यपरायणता, और प्रेम मय स्वभाव से उनके मित्रों का हृदय द्रवीभूत होता था । परन्तु उन्हें विशेषतः वशीभूत करने वाला कारण उनका क्षमागुण था. श्रीलालजीका हृदय इतना

शास्त्र में भी उनका ज्ञान प्रशंसनीय था । वे भी श्रीजी की पंक्ति में ही सामायिक करके बैठे थे । अकस्मान् उनकी दृष्टि श्रीलालजी पर पड़ी । श्रीजी के शारीरिक लक्षण को बार २ निरखने लगे । व्याख्यान पूर्ण होने पश्चात् अपनी कोठी पर गए और भोजनादि से निवृत्त हो दुकान पर आये । थोड़े समय पश्चात् हीरालालजी वस्त्र भी कार्यवशात् चुन्नीलालजी डागा की दुकान पर गए, तब चुन्नीलालजी डागा हीरालालजी से कहने लगे कि “ श्रीलाल आज प्रातःकाल व्याख्यान में मेरे पास ही बैठा था । उसके शारीरिक लक्षण मैंने तपास कर देखे । मुझे आश्चर्य होता है कि यह तुम्हारे घर में गोदड़ी में गोरख क्यों ? यह कोई पाधारण मनुष्य नहीं । परन्तु बड़ा संस्कारी जीव है । सामुद्रिक शास्त्र सच्चा हो और मेरे गुरु की ओर से मिली हुई प्रमादी सच्ची हो तो मैं छाती ठोकर कहता हूँ कि यह तुम्हारा भतीजा आगे जाकर कोई महान् पुरुष निकलेगा । जहां तक मेरी बुद्धि पहुंच सकी वहां तक मैंने महान् विचार किया तो मैंने यही मार निकाला कि यह वरुण तुम्हारे घर में रहना मुश्किल है । ” श्रियुत हीरालालजी तो ये शब्द सुनकर स्तब्ध ही हो गए ।

तब गमन श्रीजी शहर के बाहर निकलकर पान के पर्वतों पर चल गये और वहां बंदो ठहरने । वहां के नैमर्गिक दृश्य और

* शिव का नाम ही सब काम है । से परमपरम गुरुओं का
 नाम है और सब गुरुओं का नाम परमपरम । के नाम पर
 पाठ हुआ । नामों नामों विद्याय अभिप्रेषणा ।
 शान्ति देता । अपने उभय तट पर राई नामानि
 और परंपकार परायण जीवन पिताने का
 मिश्रता, धार्मी गति से कहता था । नामानि का
 नीचे झुक विनय का पाठ मिराते और अपने
 दुनियां में परमार्थ बुद्धि की प्रभावना करने को ही
 प्रतीति दिलाते थे । एक गाजू पर लगे हुए बट मूत्र पर
 ही यह सूचना मिलती थी कि राई जैसे गीज से ऐसी ब
 हो जाती है । संसार में जरा फसे तो अंगुली पकड़ते
 पकड़ते ।

संसार में, फंसते हुए को बचाने का उपदेश देने वाले
 का आभार मानते । श्रीजी के तात्विक विचार भावी ज
 इमारत की नींव टूट करते थे । कठिन पथरों से टकरा कर
 करने वाली सरिता के तट पर रसेन्द्रिय की लोलुपता के क

* उदयपुर के सरोवर से निकली हुई बडच नदी
 जा मिलती है ।

... ही निम्नलिखित कारणों से ...
 ... के साथ ...
 ... के ...

... में ...
 ... के ...
 ... के ...

सं० १६३६ में श्रीजी की धर्मपत्नी मानकृष्ण साई को दुर्ग
 में मोना ले टोंक ले आये, उस समय उनकी उम्र १२-१३ वर्ष
 की थी। पुत्रवधू के आगमन में माम का हृद्य आनन्द में उभर
 गया और उन्हें उनके विनयादि गुण और योग्यता देखकर तं
 अपनी आशा सफल होने के संकेत मानूस हुए। श्रीजी के महा
 ध्यायी मित्र भी उसकी परीक्षा करना चाहते थे कि, श्रीजी का वैराग्य
 पतंग के रंग जैसा क्षणिक है या मजीठ के रंग जैसा है। इस
 परीक्षा का क्या परिणाम होता है तथा श्रीजी के कुटुम्बादि जनों
 की आशा कितने अंश तक सफल होती है यह अब देखना है।

श्रीजी ने कई वचनामृत जेथ में रखने की छोटी पुस्तिका में

अध्याय ३ रा.

भीषण प्रतिज्ञा ।



श्रीजी नित्य की तरह अपने परोपकारी गुरुवर्ध का व्याख्यान आज भी प्रेमपूर्वक सुन रहे हैं । वीर प्रभु की अमृत मय वाणी के पान से श्रोताजनों के हृदय भी आनन्द से कतकने लगते हैं। व्याख्यान में आज ब्रह्मचर्य का विषय है । ब्रह्मचर्य सय सद्गुणों का नायक है, ब्रह्मचर्य स्वर्ग मोक्ष का दायक है, ब्रह्मचारी भगवान् के समान है, देव, दानव, गंधर्व, यक्ष, राजस, किन्नर और वड़े २ चक्रवर्ती राजा भी ब्रह्मचारी के चरण कमल में गिर झुकते हैं और उनकी पूजा करते हैं इत्यादि सार से भरी हुई सूत्र की गाथाएं एकके पश्चात् एक पढ़ी जाती है और रहस्य समझाया जाता है। नीचे २ में नैमनाथ, राजमता, जम्बू कुवार विजयसेठ, विजयारानी इत्यादि आदर्श ब्रह्मचारियों क दृष्टान्त भी दिये जाते हैं और उनके यशोगान गाये जाते हैं ।

एक ब्रह्मचारी पूज्य पुरुष क मुखारविन्द से ब्रह्मचर्य धर्म की इस प्रकार अपार महिमा सुन श्रीजी के हृदय सागर में इच्छाओं की उभंगें उठने लगीं, तरंगों ने लुभित मठामागर की तरह उनका

क्या इन सब सरासरी बच्चों का मुँह अभी मे ही खाना क्यों न करना चाहिये ? इन बच्चों के परिणाम से भीजी यही निर्भय कर सके कि हम ! मैं तो अब बच्चों का परिणाम कर सक्षम की ही सेवा प्रदण करूँगा ।

सब समय ऊपर की वृक्ष-छतायों में से मुदर सुगंधित पुष्प श्रीजी के शरीर पर गिर पड़े, वृक्षों परके पक्षी मानो श्रीजी की दृढता की तारीफ करते हों और प्रतिक्षा अटल पालने का आग्रह करते हों,

ना दिन ग होना हो तो जल का "नी" का नामाति
 पर भुने पूर्ण नामाति "नी" का नामाति
 ना स्वर्ण तक नहीं रहना । जल मल में पड़ने का नामाति
 नीनी ने ऐसे निम्न : जल की जर्म नामाति नी नीप का पतिना नी
 और वे अपनी आत्मा में बना उल्लाह बना मनेप प्रकटा पर ही
 नरक फिरे । जुवानी में ऐसे निम्न प्रकटा नी पूर्ण पुत्रोम्य त
 ही फल है ।

जरा जन जाल्बी लंजे, और फेरी जुवानी छे ।
 कलंकित कीर्ति ने करशे, सर ! वैरी जुवानी छे ॥
 अभिमाने करे अंधा कगवे नीच ना धन्धा ।
 विचारो फेरवे सन्धा जुवानीनो गुमानी छे ॥
 वनाव्या कैकने कैदी, नसाव्या शीव कैक छेदी ।
 जुवानी शत्रु छे भेदी न बानो के मजानी छे ॥
 विक्रमे ने दलगनारी, बतवे पाप्नी बारी ।
 गुजाडे हुाडे ना सारी, पीटा कारक पीछानी छे ॥
 समझ संसारना प्राणी जुवानी मान गस्तानी ।
 अरे'पण चार दोडानी जुवानी जाण फानी छे ॥
 कथे शंकर फुटी काया फुटी संसार की राया ।
 जुवानीनी फुटी आया फुटी आ जिन्दगानी छे ॥

माजी के बहने में इस बात की गार नानु के मनत करने फिर सेठ हीरालालजी को हुई । सेठ हीरालालजी ने पीलाता-बुलाकर कहा कि, गवरदार ! दीना का किमी दिन नाम भी लिया तो ! आज से तूने साधु के पास भी किमी दिन नहीं जाना । साधु तो निठले बैठे २ लडकों को चढ़ा मारते हैं । ” इन शब्दों से श्रीलालजी के हृदय में बहुत दुःख हुआ । उन्होंने बोलने का प्रयत्न तो किया, परन्तु कुछ बोल न सके । अपने पिता के बड़े भाई हीरालालजी की आज्ञा का उनने कभी उल्लघन नहीं किया था । उनके सामने बोलना भी उन्हें दुःसाध्य था । सेठ हीरालालजी ने नाथूलालजी से भी कहा कि “ इसकी बहुत संभाल रखना और साधु के पास इसे बिल्कुल मत जाने देना ” ।

हीरालालजी सेठ की सखत मनाई होने पर भी श्रीलालजी गुप्तरिति से अपने गुरु के पास जाने लगे । सद्गुरु का वियोग न सह सके । सत्संग में कोई अनोखी आकर्षण शक्ति रहती है श्रीजी की उत्तम ज्ञानाभिलाषा और सत्संग के आकर्षण के समीप सेठ हीरालालजी की ओर का भय कुछ गिनती में न था ।

एक दिन श्रीजी ने परमप्रतापी पूज्य श्री उदयसागरजी

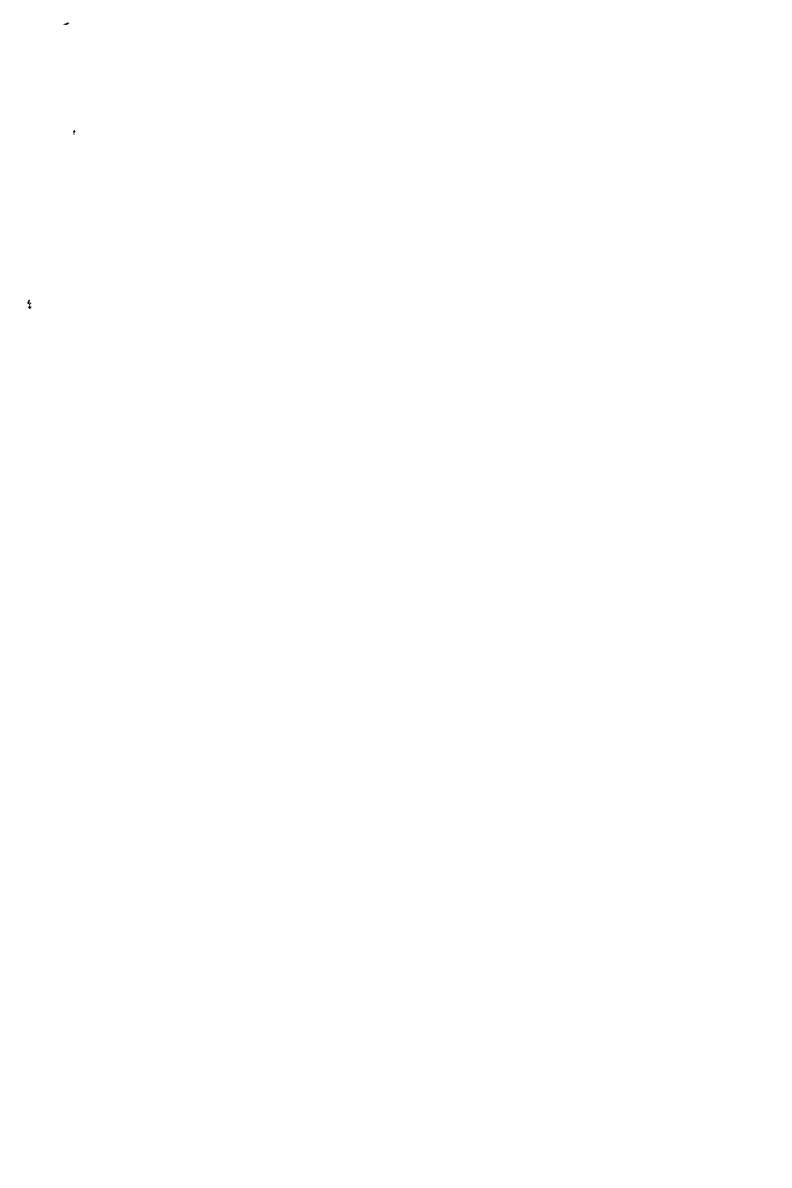
* इन महापुरुष का जीवन-चरित्र गुर्वावली में दिया है ।

बरकटा थी। इसके विचार करने पर हमें पट्टा की जगह मिली है
 तरह किसी भी युक्ति पर्युक्ति से या अन्त में राजा हमसे भी संसार में हमसे
 की थी। जैनशास्त्र का ऐसा कायदा है कि जयसक मंग की प्राप्ति
 न मिले तब तक दीक्षित न हो सके। श्रीजी ने बहुत से प्रयत्न
 किये, परन्तु आशा नहीं मिली। हमसे श्रीजी को बहुत दुःख
 हुआ और ऐसा निश्चय किया कि अब तो किसी दूर देश में जाकर
 सन्त महन्त की सेवा कर जैन सूत्रों का अभ्यास कर आत्मिक
 साधना चाहिये।

की शक्ति का नाप नहीं हो सकता। आवश्यकता उपस्थित होती है, तब ही प्राकृतिक अकलकला के प्रदर्शन निरखने का मौका मिलता है। शिवदासजी ऋणवाल श्रीलालजी तथा उनके कुटुम्बीजनों में पूर्णतया परिचित होने से सब हाल जानते थे। इमलिये उन्होंने दूसरे दिन एक ऊंट किगये कर श्रीजी को समझा बुझा टोंक की तरफ खाना किया और जबतक तबीयत नादुरुस्त है तबतक टोंक में रहने की ही हिदायत की। तथा ऊंटवाले से भी खानगी रीति से कहा कि तुम इन्हें टोंक पहुंचाकर चिट्ठी लाओ तभी भाड़ा मिलेगा। उसी दिन शाम को श्रीजी टोंक पहुंचे।

श्रीजी—एक कपड़े से भगे उसकी खबर नाथूलालजी को मिलते ही वे तुरंत उन्हें ढूंढने निकले। वे कपासन, निम्बाहेड़ा हो खबर मिलते ही पीछे टोंक आये। उस समय श्रीजी भी टोंक आया पहुंचे थे। नाथूलालजी ने श्रीजी से यह गद्गद् कंठ से कहा “भाई तुम इस तरह घड़ी २ चले जाते हो इमीलिये हमें बहुत हैरान होना पड़ता है और तुम भी तकलीफ पाते हो,,

श्रीजी—यह तकलीफ दूर करना तो आपके ही हाथ है दीक्षा व आशा दो कि, सब तकलीफ भिट जाय माजी (बहां हाजर थे) बोल व
 “ दीक्षा लेनी थी तो क्याह कयो किया ? तेरे गए बाद इस बिचा का रक्षक कौन होगा ? ”



संसार का सार समझा उसका जन्म सार्थक किया था, जिससे पुत्र का श्रेय हो उसमें माता को अंतराय न देना चाहिये ।

माताजी कुछ बोल न सके उनका हृदय भर आया, आँखों से अश्रु प्रवाह प्रारंभ हुआ । नाथूलालजी की चकौर चलुआँ ने भी माताजी का अनुकरण किया इस करुणा रसपूरित नाटक के समय श्रीजी के हृदयसागर में तो ऐसी ही तरंगे उठ रहीं थीं कि—

अनित्यानि शरीराणि, विभवो नैव शाश्वतः ।

नित्यं सन्निहितो मृत्युस्तस्माद्धर्मं च साधयेत् ॥

श्रीजी बाहर की हवेली में जाने के लिये उठ खड़े हुए । और मातु श्री को आश्वासन देते बोले— “ मातु श्री ! आपके संसार मोह के अश्रु आपकी मस्तिष्क की गर्मी को शांत करते हैं तो भी उन्हें देखकर मुझे दुःख होता है ।

परन्तु मातु श्री ! आप क्या नहीं जानते की बार २ होते हुए जन्म, जरा और मृत्यु के अनंत दुःखों के सामने यह दुःख किस गिनती में हैं । आपको दुःख हुआ इसीलिये क्षमाता हूँ । माजी ! यह तो आपका अनुभव किया हुआ आप भूल जाते हैं कि—

“ नो मे मित्रकलत्रपुत्रनिकरा नो मे शरीरं त्विदम् ”

मित्र, कलत्र, पुत्र, शरीर आदि मे से कोई भी क्षपना नहीं ।

पाँच लगे । माजी उस समय मानिकलाल को रमाती हुई खड़ी थी श्रीजी ने उस छः माह के बालक (मानिकलाल) को प्रेम से माता के पास खे ले लिया और अपनी गोद में बिठाया । थोड़े समय तक उसे रमाया और फिर माजी के हाथ में देकर श्रीजी बोले " इसको अच्छी तरह रखना " माजी बोले " बेटा ! इसकी और हमारी संभालेने का काम तो तुम्हारा है " श्रीजी मौन रहे । वैराग्य के विच स्फुरित होने लगे ।

प्रियवाचक ! हम लोग भी एक तत्त्ववेत्ता के विचारों का मन् करे " इच्छुक हृदय नहीं बोल सकते, अगर बोल सकते हैं तो उन्हें के नहीं सुन सकता । किसी को प्रसाह भी नहीं, शोक पूर्ण नयन दर्द नगे सकते " अगर रोते हैं तो लोग हंसी करते हैं.....

"आनाज और गति" की यह दुनिया तथा 'शान्ति और एकान्त' का यह जगत् भिन्न २ होने पर भी बहुत समीप २ है. गुप्त जिद की यह इन्द्राण, हृदय के कई चभरते आंसू, बुद्धि की कितनी अज्ञान तरंगों हमें निश्चकन होती मालूम पड़ती हैं । जिन इन्द्राणों के अन्त में के लिये अगार में स्थान नहीं, अश्रु के प्रसाह । अन्त में जिन जगत् की सहायता की आवश्यकता नहीं, तरंगों को मूर्ति । अन्त में जिन दुनियाँ जानसुता नहीं ।

बिना संयम लिये टॉक में पाँव भी न देंगे ” ।

श्रंत में निराश हो नाथूलालजी तथा हरदेवजी टॉक की तरफ खान
हुए परन्तु जाते समय टॉक निवासी बालजी नाम के ब्राह्मण को वहीं
रन्वगए और उसे कह गए कि, जहां २ श्रीजी विचरें वहां २ तु
इनके साथ जाना इनकी सार संभाल लेना और इनके कुशल वर्त-
मान से हमें रोज २ स्थान २ सहित टॉक लिखते रहना ।

नाथूलालजी ने टॉक आकर माजी प्रभृति से सब समाचार
कहे और कहा कि, संसार में रहने की उनकी बिल्कुल इच्छा नहीं
है । माजी ने कहा कि, मुझे यह बात नई नहीं मालूम होती अब उसे
अधिक मताना मुझे ठीक नहीं लगता . . .

यह उल्लेख सुनकर मांजी का अत्यन्त दुःख हुआ। उसी दिन से उसे
 प्रभुसा होने लगा। सोने समय तक विचार विषयन से उसे
 फिर लक्ष्मीचन्द्रनी तथा मांजी के नाम से कहा कि, वि. मानिकता
 (नाथुलालजी का पुत्र) को विनाल से के नाम पर रक्षित है। मां
 लालजी ने मांजी की यह व्याख्या शिरोधार्य की, फिर मांजी ने कहा
 "भुव ने तुम आज्ञा देने जानो। मेरा आशीर्वाद है कि यदि
 सुन्दर रीति से संयम पाले, आत्मा का कल्याण करे और
 मार्ग दिपावे"। धन्य है ऐसी उत्कृष्ट उन्मा वाली माताओं को।
 इसी तरह गुजरमलजी पौरवाह की माता तथा उनकी स्वी त
 उनके भाई सांगीलालजी को समझा उनकी दीक्षा की आज्ञा
 प्राप्त की। पहिले से ही साधु का वेप पहिन लिया होने से कि

* माता के सम्बन्ध में एक कथा पूज्य श्री कहते कि पां
 पुत्र वाली एक माता के एक पुत्र की इच्छा दीक्षा लेने की हो
 से गुरु श्री ने माता को सदुपदेश दे अपने पुत्र की भिक्षा देने क
 उस माता ने अपने अहोभाग्य समझ एक के बदले दो पुत्रों
 गुरुजी के शिष्य बनाये।

करना चाहिये और सम्प्रदाय की रीतानुसार दीक्षा में वड़े मुनियों को वे वदना करेंगे और छोटे मुनियों उन्हें वदना करेंगे परंतु सब को उतनी अज्ञा में चलना चाहिये ।" ये शब्द सुनकर सब ने एक ही आवाज में पूज्य श्री को विधायन दिलाया कि आज्ञाते आज्ञा की आज्ञा को प्रभु आज्ञा समान समझ हम आपको आज्ञा में विचरेंगे ।

पश्चान् सद्गत आचार्य श्री के मृत देह को हजारों मनुष्यों के हृदय में मनोहर विमान में पधरा बड़े धूमधाम से जय २ नंदा । २ भद्रा के शब्दों से आकाश को गुंजाते शहर के मध्य हो श्मशान में ले गए वहा चदन, नाष्ट घृतादि से अग्नि संस्कार किया ।

आचार्य श्री चौथमलजी महाराज अंतिम तीन वर्षों से रतला स्थिरवाम थे. कारण कि उनकी नेत्र शक्ति क्षीण हो गई थी । कारण से और वृद्धावस्था होने से साधुओं की बहुत संख्या की एक गद्दी सम्प्रदाय की भली भाँति संभाल करने का कार्य आचार्य श्री चौथमलजी महाराज को मुश्किल मालूम होने से सम्प्रदाय की सम्यक् रीति में सार संभाल और उन्नति होने से ये उन्होंने अपनी आज्ञा में विचरते साधुओं में से चार साधुओं । प्रवर्तक की तरह मुकुरंग कर सब अधिकार उन्हें सौंप दिये थे व । प्रवर्तकों के नाम निम्नांकित हैं ।



अध्याय ११ वाँ

सदुपदेश-प्रभाव ।

भीलवाड़ा—पूज्य श्री श्रीलालजी महागज उदा भीलवाड़े-पधारे शेषकाल कल्पने दिन ठहरे । भीलवाड़ा के महदाजी श्री गोविंदसिंहजी साहिव ने श्रीमान् के सदुपदेश रत्न प्राप्त किया । वे व्याख्यान में पधारते थे, जैनधर्म बनकी हठी २ की मीजी में रम गया था, वे पूज्य श्री के भक्त बन गए । उपरोक्त हाकिम साहिव ने जीवदयाक अनेक कार्य किये हैं और जैनधर्म का बहुत उद्योग किया है ।

श्रीयुक्त कर्गोहीमलजी सुगणा कि, जो भीलवाड़े के एक मन्तव्य से उन्हें पूज्य श्री के सदुपदेश से वैराग्य उत्पन्न होने से, माल, जमीन इत्यादि त्याग कर सं० १६५८ के १०५ नम्बर १ के रोज बड ठाठ (भूतधाम) में दीक्षा ली

श्री श्री के व्याख्यान में रामती अन्वयिनी, दिव्दु गुप्त का नाम है, इत्यादि नामों के साथ श्री श्री के पाठ पाठों में ११११ की पाठ पूजा प्रम हावया था ।

किनने धन्य मतावलंबियों ने जैन-धर्म अंगीकार किया सुप्र-
सिद्ध सुश्रावक गणेशीनालजी मालू कि, जी माधुमार्गी जैन धर्म के
दृष्ट विरोधी श्रे पूज्य श्री के परिचय और अनटुपदेश से दृढ श्रावक
बन गए और चातुर्मास में श्रीजी के दर्शनार्थ आये हुए सैकड़ों
श्रावक श्राविकाओं के आगत स्व गव तथा भोजन इत्यादि का तमाम
प्रबंध उन्होंने अपने खर्च से किया था। इतनाही नहीं परंतु जैन-
धर्म के उद्योत के लिये तथा जनसमूह के हितार्थ परमार्थ कार्य में
प्रदाने लानों रुपयों का सद्व्यय किया और वर्तमान में उनके

अध्याय १२ वाँ

अपूर्व—उद्योत ।

—10—

पृथ्वी का चातुर्मास होने के कारण उदयपुर संघ में आमन्देसमय छा गया पहिले कभी किसी स्थान पर पक्षीसंरंगी सामायिक होने का वृत्तान्त नहीं सुना था। वह पक्षीसंरंगी यहाँ पर हुई इस संवर-करणी में ६२५ पुरुषों की उपस्थिति की आवश्यकता होती है। लोगों का उत्साह इतना अधिक बढ़ा था कि, विहीन निवासी मोक्षसिंहजी सुराना ने एक ही आमन पर एक साथ १५१ सामायिक किये। एवं दिन रात खड़े रहकर सामायिक का समय व्यतीत किया। इसी भाँति घेरीलालजी महता ने १३१, तथा कन्हैयालालजी भंडारी ने १३१ सामायिक खड़े रहकर किये और अति उत्साह-पूर्वक पक्षीसंरंगी के ऊपर सामायिक की पक्षरंगी तथा नक्षरंगी की। इस चौमासे में १०८ अठारहवाँ हुई थीं। इसके सिवाय सैकड़ों संघ तथा अन्य प्रकार की भी बहुतसी उपस्थितियाँ हुई थीं।

कई खटीकों (कसाइयों) ने हमेशा के लिये जीवित्वा करने का त्याग किया। इस प्रकार त्याग करने वाले खटीकों में से

“ आजवित्त शिकार नहीं खे
प्रतिज्ञा की । ”

एक-गृहस्थ कायस्थ लाला
गान होते हुए भी ब्रह्मचर्य व्रत
का स्वीकार किया, सामायिक
और छठ धर्मी जैन बन गये ।
गंडस भन्व्य गालुम होता था ।
धी । चेहरे पर माधुर्य, नाभीर्य
का प्रकाश झलकता था । जिस
इच्छानुसार प्रभाव पड़ता था ।

सरकारी मेम्बर बाबू दामो
लाल के प्रत्यक्ष गृहस्थ थे वे श्री
मान कर अत्यन्त हर्षित होते, स
विन्नी ही बार तो वे व्यापारान
का प्रतीति मंद मंद घर मे—

गईया—गीत दिमानरु

गद गोतम के शुन कुंड हली है ।

गोद गतात्तल भेद चली,

गग की गदवा गग दूर करी है ॥

(२२२)

अध्याय २० वाँ ।

राजस्थानों में अहिंसा धर्म का प्रच

श्रीमान् रावतजी ने एक-एक करके जिले-जिले में
गया, जहाँ-जहाँ वे गये, वहाँ-वहाँ के शिक्षक, छात्र, और
गुरुकुलाध्यक्षों ने उनका स्वागत किया और उनके
विषय में चर्चा की।

उन्हीं के जेल से भी समाजसेवियों ने एक भाग ले लिया
जो इतना बड़ा था कि तबल, गुडर, कुम्हार, कला
कार, योगदान ने एक भाग ले लिया। यहाँ गारम २ पदम
अमारम १ इन्हेला के जिले करना २ प्रारंभ व्याग कर दिया।

राजस्थानों के ठिकानदारों की तरफ से जीव-दया के
प्रावधिक पट्टे परवाने।

ठिकाना चान्डी-के श्रीमान् रावतजी श्री प्र. तन्नासिंहजी ने अपने
इलाके में आग्रह कार्मिक और वैशाल महीनों में जानवर और शिकार
वास्ते सुगठ-नाम की इस्मान की ग्यामन व प्रभावम में जीव
मारने की सु-मानियत की व सनद परवाना नम्बरी ३८२ में
करमाया।

ठिकाना नेदमर-के श्रीमान् रावतजी श्री प्र. भोपालसिंहजी ने
अपने इलाके में उपराक हुस्म निधाकर पट्टा नम्बरी १२ में
करमाया।

ठिकाना चोरड़ा-के श्रीमान् रावतजी साद्वि श्री प्र. बाहरसिंहजी

वहां से अनुक्रम विहार करते आचार्यश्री १३ ठाणों
 जंगपुर हो कपासन पधारे, यहां श्रीजी के चार व्याख्यान हुए। जैन
 वैष्णव, मुसलमान इत्यादि सब धर्म वाले मिलाकर प्रायः २०००
 मनुष्य व्याख्यान में उपस्थित होते थे, जीव-दया का पूज्य श्री के मुंद
 उपदेश सुनते २ वहां के श्री संघ के दिल में दया आई और जीव
 को अभयदान देने के लिये एक स्थायी फंड कायम करने का प्रयत्न
 किया- तुरन्त ही उस फंड में १०००) रु० एकत्रित हो गए,
 व्याख्यान में कोठारीजी बलवंतसिंहजी साहिव तथा हाकिम साहिब
 जोधसिंहजी तथा चित्तौड़ के हाकिम श्री गोविन्दसिंहजी प्रभृति भी
 पधारते थे।

चड़ीसादड़ी कः चातुर्मास पूर्ण किये पश्चात् आचार्य महाराज
 रतलाम की ओर पधारे। वहां श्री जैन ट्रेनिंग कालेज के निपात्री
 भाई मोहनलाल मोरवी वाले ने उत्कृष्ट वैराग्य से पूज्य श्री के
 समीप दीक्षा ली, जिनका दीक्षा-महोत्सव रतलाम श्रीसंघ ने अत्यंत
 दी हर्षोत्साहपूर्वक किया वहां से विहारकर मार्ग में प्रगणिका
 उपहार करते हुए पूज्य श्री मानवा मारवाड़ को पानन करके
 निरने लगे। कितने ही भयंजीवों ने वैराग्योत्पन्न होनेसे ही ता भी।

अध्याय ३२ वाँ ।

विजयी विहार ।

नोधपुर से अनुक्रमशः विहार करते पूज्य श्री नयेनगर पवारे वहां मुनि श्री देवीलालजी स्वामी का मिलाप हुआ जय काठियावाड़ में पूज्य श्री विनरते थे तत्र जावरा वाले संतों के सम्बन्ध में पूछताछ की तो उन्होंने उत्तर दिया कि, मालवा में पधार आप उचित नियंत्रण करें परन्तु जयपुर के भावकों ने श्रीजी महाराज से जयपुर पधारने की प्रार्थना की थी उसके उत्तर में उन्होंने जयपुर पधारने के लिए कुछ आश्वासन दिया था इसलिए उन्होंने जयपुर ही फिर मालवा की ओर पधारने का विचार दर्शाया तत्र देवीलालजी महाराज ने भी जयपुर पधारने की इच्छा प्रकट की ।

नयेनगर में उस समय पूज्य श्री के पधारने से अपूर्व आनन्दोत्सव छा रहा था पूज्य श्री तथा देवीलालजी महाराज के सिवाय पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज का सम्प्रदाय के पूज्य श्री नंदलालजी महाराज ठाणा ५ तथा श्री पन्नालालजी के बलचंदजी महाराज ठाणा ७ तथा आचार्य श्री के मुनिवरों में से मुनि श्रीलालचंदजी शोभालालजी आदि कुल ५४ मुनिराज तथा ३३ आर्याजी वस

उस मौके पर राधा मिश्राजी भाई श्रीगुलालजी मनेजी ने पूर्ण देवालय पूर्णरूप से पूज्यजी महाराज के पास दीक्षा तदंग की वस दीक्षा महोत्सव के समय करीब ४ मे ५ हजार मनुष्य उपस्थित थे ।

श्रीमान् गन्दाधिपति के दर्शनार्थ पंजाब, राजपुताना, मेवाड़, मारवाड़, मालवा, गुजरात, फाठियावाड़ आदि देशों के सेठों मनुष्य आये थे, जिनका तन, मन, धन से नयेनगर वालों ने बतौर रोषि से आतिथ्य सत्कार किया था ।

पूज्य श्री के पधारने से व्यावर उस समय एक तीर्थस्थान बन गई होरहा था ।

पूज्य श्री नयेनगर से अजमेर पधारे और जयपुर पधारने से जल्दी होने से अजमेर नगर के बाहर ही सेठ गुमानमलजी कोठी की कोठी में विराजे । परन्तु उनका पुण्य प्रभाव तथा आकर्षण शक्ति इतनी अधिक प्रबल थी कि व्याख्यान में साधुमार्गी श्रावण के सिवाय सेकड़ों हजारों की संख्या में जैन अजैन सज्जन उपस्थित होते थे और सेठ गुमानमलजी साहिब की विशाल कोठी के भीतर के विशाल आंगन पर के चौक में भी पीछे से आने वाले कर्मठों के बैठने तक का स्थान न मिलता था । इस समय प्रसंगोपात् पूज्य श्रीने प्राणिरक्षा के सम्बन्ध में उपदेश दिया उस पर से श्रीमान् राधेशंकर चांदमलजी साहिब की प्रेरणा से रा० ब० सेठ सोभागमलजी उद

अध्याय ३३ वाँ ।

सम्प्रदाय की सुव्यवस्था ।

रतलाम (चातुर्मास) सं १९७१ एम समय भी पूज्य पभारने से रतलाम में सानन्दोत्सव हो रहा था, व्याख्यान कोंगों की मंडलियां की मण्डलियां आने लगी थीं । श्रीमान् ठाकुर साहिब पंचेड़ा से हास पभार कर व्याख्यान का लाभ ये उपरांत राजकर्मचारीगण इत्यादि तथा हिन्दू मुसलमान संख्या में व्याख्यान श्रवण करते और उसके फल स्वरूप रतलाम में अवर्णनीय उपकार हुए त्याग प्रत्याख्यान स्कंध तपश्चर्या इत्यादि बहुत हुई ।

इस मुवाधिक चातुर्मास बहुत शांतिपूर्वक व्यतीत हुआ । वेदनीय कर्म की प्रबलता से कार्तिक शुक्ला १० के रोज पूज्य के पांच में एकाएक दर्द जोर बढ़ गया, इसलिये मगसर वद के रोज पूज्य श्री विहार न कर सके । जिससे श्रीजी के दिल ऐसा विचार हुआ कि, मेरा शरीर पग की व्याधि के कारण विफल करने में असमर्थ है इसलिये सम्प्रदाय के संख्यावद्ध संतों की भाल जैसी चाहिये वैसी नहीं हो सकेगी और एक आचार्य उनकी संभाल से शुद्ध संयम पलाने की पूरी आवश्यकता है ।

परमेश्वरी स्वचन्द्रजी महाराज के नेत्राग्र के मन्तों की सुत्र
की रीतिनाचरी महाराज की रहे ।

५ । पुत्र भी चौथम नता महाराज साहिब के परिवार
मन्तों की सुपुद्गी भी रानचन्द्रजी महाराज की रहे ।

(५) स्वामीजी भी राजमन्तों महाराज के शिष्य
नामो रामजी महाराज के परिवार में जनाहिरखालजी मार सम्भ
कर ।

ऊपर प्रमाणों गण पाच की सुपुद्गी अप्पेसरी मुनिराजों की
हैं सो अपने २ सनों की मार सम्भाल व उनका निभाव करते र

यह ठहराव पूज्य महाराज श्री के सामने उनकी राय सुता
हुआ है सो मय सघ मजूर कर के इस मुताबिक बर्ताव करें ।

उपरोक्त ठहराव गुन कर श्री सय में हर्षोत्साह की आ
वृद्धि हुई थी । उस समय रत्नाम में मुनिराज ठाणा २५
आर्याजी ठाणा ६० के करीब विराजमान थे ।

इस चानुर्मास में श्रे० मूर्तिपूजक जैनों के अप्पेसर सुभा
साहिब खेठ केसरीसिद्धजी कोटावाजा भी श्रीजी की सेवा में
ज्वर वक्त आये थे और वार्तालाप के परिणाम स्वरूप अत्यंत आ

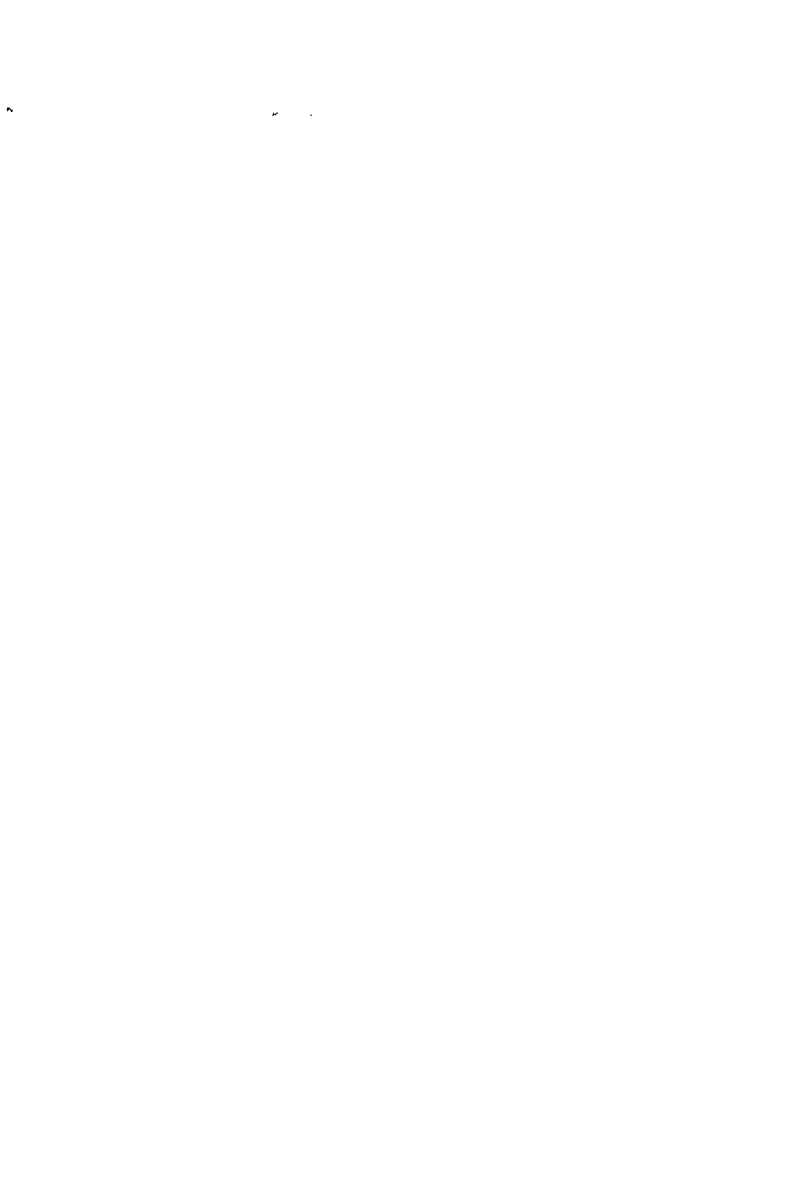


लज्जकते की गाम कापेस में लाया लाजपतिराय ने अ
की हैसियत से जिन शब्दों की गर्जना की भी उन शब्दों का ए
रग्य गहां हो जाता है " आप अपनी आत्मा में दृढ भ्रद्धा ए
अपने हृदय में कितना ज्वलन हो रहा है इसके ऊपर कितने अप्रे
बलिदान होने को तैयार हैं, आम लोगों में से कायरता कितने अं
में भगी है । शुद्ध भाव से अप्रेसर होने और शुद्ध भाव से दौ
वाले अप्रेसरों के पीछे चलने की शक्ति अपने में कितने अंश
आई है उन सब बातों पर अपनी विजय का आधार है ।"

जावरा की यह बात जो कि थिलकुल छोटी थी तो भी छो
छोटी बातों से आत्मभ्रद्धा की सीढ़ियां चढ़ने लगे तो मौका अ
पर परमात्मा के संदेश को भी भूल सकेंगे । एक विद्वान् का क
है कि—आत्मभ्रद्धा द्वारा ही मनुष्य प्रत्येक कठिनाई जीत स
है । आत्मभ्रद्धा ही रंक मनुष्य का महान् मित्र और उसकी स
त्तम सम्पत्ति है । पाई की भी विना सम्पत्ति वाले आत्मभ्रद्धा
मनुष्य महान् से महान् कार्य कर सकते हैं । और विना आ
भ्रद्धा के करोंड़ों की पूंजी भी निष्फल गई है ।

पूज्य श्री जावरे में विराजते थे उस समय श्री देवीलाल
महाराज भी जावरे पधारे और श्रीजी महाराज से मंदसोर पधा
का आमह किया, परन्तु उनके अमुक कौल करार को पकड़





से परिभाषित किया गया, परन्तु भी के अर्द्ध शतक के अन्तर्द
 लों में भी जीवितमान न करने तथा शिखर न चढ़ने की परि
 श्रुत तत्पर- ही दस्तावेज भी महाजन भी नहीं मं कर दि
 महाजनों ने भी देर करते से अधिक "पात्र न लेने का द
 उन्हें लिख दिया ।

पश्चात् ' ग्नाक ' नामके एक माम को जयपुर में श्रीगु
 लाजजी कांठरिया, श्रीगुल केसरीमनजी रांठा इत्यादि २०
 गण और गढ़ों के जमीनदारों के हस्त में श्रीमान् पूज्य महा
 उपदेश का अन्तर पढ़ुंचा ऐसा उद्घाटन किया कि मौजे 'ग्नाक'
 पटेल, नम्बरदार, ठाकुर, पत्रा, दला, धीगा, इत्यादि तीन शि
 में से एक शिखर आद आलाद (पीठी दर पीठी) तक न चढ़ें,
 ग्नाक के ताबे में शामगढ़, तुलवा इत्यादि करीब १०० गाम ।
 सय में. इसी अनुषार उद्घाटन हुआ उसके बदले में एक
 (चतूतरा) बंधा देने तथा अफीम, तम्बाकू, ठंडाई एक दिन के
 देने श्र बाबत महाजनों ने स्वीकार किया और परस्पर दस्तावेज
 सही दी ली गई ।

* सं० १९७६ में श्रीमान् आचार्य महाराज शंपकाल
 वर में पधारे थे, तब शिखर की निगरानी के लिये आहेंडें के
 दिन पहिले महाजनों में से करीब ४०-५० स्वयंसेवक गृ

मारवाड़ में उपकारी विहार



ठगानर से पूज्य श्री अजमेर पधारे और गुजानगढ़ की मीकानेर के भावक पोगरमलजी कि जो हजारों रुपयों की सत्ति त्याग प्रपल वैराग्यपूर्वक पूज्य श्री के पास दीक्षित ले थे, उन्हें दीक्षा देने के लिये उभर पूज्यश्री जल्द पधारने परन्तु श्रीमान् जैनाचार्य श्री रत्नचंद्रजी महाराजकी सम्प्रदाय श्री विनयचंद्रजी महाराज का स्वर्गवास होगया की जगह आचार्य स्थापित करने थे, इसलिये श्रीमान् पों श्री चन्दनमलजी महाराज ने यह कार्य श्रीमान् की सहाय से सफल करनेकी अर्ज की, इसलिये श्रीजी महाराज अरु और हजारों मनुष्यों की भीड़ में श्रीमान् शोभाचंद्रजी महा विधिपूर्वक आचार्य पदारूढ करने की क्रिया में उपस्थित विविध संघमें अपूर्व आनंद मंगल वरताया। दोनों सम्प्रदाय दुश्मों में परस्पर इतना अधिक प्रेमभाव देखा जाता कि परस्पर अन्त, आनंद से उभराये विना न रहता। इस दिन पहिले महाजनों में से करीब ४०-५० स्वयसेवक

का मकान उतरने के वास्ते दिया, जो वे मकान नहीं देते तो वे उतरते ? उन साधुओं के बाप दादों ने भी वैसा मकान न दे होगा ' ऐसी २ अनेक बातें रात के छः बजे से साढ़े आठ बजे तक होती रहीं और साध्वीजी तथा श्रावक सब उसे सुनते । वे सब बातें लिखी जायँ तो एक छोटीसी पुस्तक बनजाय । मैंने खेत्तप में लिखी हैं । फिर मैं तो उन सबको बातें करता हूँ । अपने मकान पर जा सोया । तत्पश्चात् ता० १४ के रोज संप्रदाय के साधु मुंवासर आय । मालचन्दजी तथा मालचन्दजी जो बातें कहीं थीं वे सचची हैं या झूठी, उसके परीक्षार्थ मैं गोपानी में उनके साथ रहा और देखा तो गोचरी में कोई किसी प्रकार ज्वरदस्ती नहीं करते । दोषीले आहार पानी न लेते । परिचय ज्ञात हुआ कि मालचन्दजी इत्यादि की सब बातें मिथ्या हैं । साधुओं को लोग स्थान २ पर आकर प्रश्न पूछते थे और वे को यथार्थ उत्तर भी दे देते थे, परंतु गोचरी के समय कई गृह में उन्हें रोकते तो वे कहते कि अभी मौका नहीं है ।

अब मेरे दिज्ञ में जो विचार उत्पन्न हुए, उन्हें जाहिर करता सच तेरहपंथी भाइयों से प्रार्थना करता हूँ कि इस तरह कदा करना, साधुओं को मिथ्या कलंक देना, उन्हें उतरने के लिये मन न देना, लड़ाई मगड़े करना, चातुर्मास न करने देना, ये भले धर्मियों के काम नहीं हैं । अपने तेरहपंथी के साधुओं को तो वा

जौहरी नवरत्नमलजी ने प्राप्त किया था। वे स्वतः तथा उनके जौहरी मुन्नीलालजी इत्यादि व्याख्यान पूर्ण होते ही दरवाजे खड़े रहते और सहमानों को हाथजोड़ अपना मकान पवित्र वास्ते अर्ज करते तथा खड़े रह कर सबको आमह से जिमाते रतलाम में युवराज पदवी के उत्सव पर जयपुर से खास जौहरीमूल लालजी रतलाम पधारे थे और अपने प्रांत की ओर से इस वाचत हार्दिक अनुमोदन दिया था।

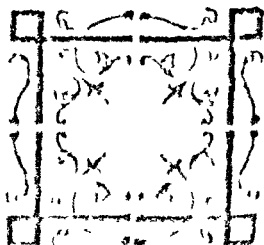
मोरवी चातुर्मास के समय स्वागत का कुल खर्च देने के सेठ सुखलाल मोनजी अपने स्नेहियों के साथ जयपुर आये थे श्रीतिभोजन दे स्वधर्मियों से भेट करने का अवसर प्राप्त किया था।

जयपुर चातुर्मास में देश परदेश के कई श्रावक जयपुर में से धर्म का बड़ा उद्योत हुआ था। जागीरदार और अमलदार तथा बहादुर डाक्टर दुर्जनसिंहजी इत्यादि ज्ञानचर्चा के लिए पूज्य के पास आये और उनके मनका सरल रीति से समाधान हो पर अपने दूसरे मित्रों को भी साथ लाते थे।

जयपुर चार्तुमास पूर्ण होने पर पूज्य श्री टोंक पधारे, उस टोंक की ओसवाल जाति में कुसम्प था। ज्ञाति में दो तड़ें होगी परन्तु पूज्य श्री के सदुपदेश से कुसम्प दूर हो पूर्ण एकता होगी।

टोंक से क्रमशः विहार कर पूज्य श्री रामपुरा पधारे और १९७४ के फाल्गुन शुक्ल ३ के रोज संजीत वाले भाई नंदराम पूज्य श्री के पाम रामपुरा मुकाम पर दीक्षा ली।

और सेठानी के दृष्टांत का लोगों पर पूर्ण प्रभाव पडा।
'शत स्वन्या' में कितनी ही बाइबो के शिरपर डारुम
था वह पूज्य श्री के वहां पधारने पर उनके उपदेश मे पा
गया था ।



(३७८)

पयोग करते थे । संवत्सरी के दिन बाबाजी सूरतसिंहजी साहिब
 पूज्य श्रीजी से अर्ज की कि आज बड़ा भारी संवत्सरी का दिन
 और बाई, भाई वृहत् संख्या में व्याख्यान में इकट्ठे होंगे,
 मनुष्य के लार एक २ बकरा अभयदान पावे तो धैकड़ों को
 दान मिलेगा । इन पुण्यात्मा पुरुष की हितसलाह उदयपुर के
 श्राविकाओं ने तत्काल स्वीकृत की और प्रायः दो, दार्ई
 बकरों को अभयदान देने का प्रबंध किया । बाबाजी साहिब
 स्वर्ग सिधार गए हैं । पास के पृष्ठ पर आपका चित्र दिया
 वेदला के रावजी साहिब श्रीमान् नाहरसिंहजी साहिब भी
 के दर्शनार्थ पधारे थे ।

उदयपुर के नामदार श्री कुँवरजी बाबजी श्री श्री
 भूपालसिंहजी साहिब जो पूज्य श्री की अपूर्वता से पूर्ण
 उन्होंने पूज्य श्री का दर्शन व उपदेश सुनने की ईच्छा दर्श
 १६७५ श्रावण सुदी ८ के रोज सज्जननिवास बाग के
 महल में (जिसकी पूज्य श्री ने चातुर्मास पहले ही रिया
 आजा लेली थी) समागम हुआ । दूर से देखते ही श्रीमान्
 कुमार साहिब पग में से बूट निकाल पूज्य श्री के समीप
 नमस्कार कर महाराज के सम्मुख बैठ गए । उस समय उन
 कितनेक राजकीय गृहस्थ भी थे । उस समय पूज्य श्री ने
 शिष्ट उपदेश देते हुए कहा कि:—

